विचार को बदलना सीखें

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनुष्य मनस्वी प्राणी है। उसके पास मन है और विकसित मन है। पशु के पास भी मन है, पर उतना विकसित नहीं है जितना मनुष्य का है। मनुष्य जितना गूढ़ चिंतन कर सकता है, उतना पशु कभी नहीं कर सकता। आज तक के इतिहास में एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है, जो किसी पशु के चिंतन से प्रसूत हुई हो। विचार के क्षेत्र में एक भी उसकी देन नहीं है, जिसका मूल्य आंका जा सके।

विचार सूचक है आंतरिक व्यक्तित्व का और बाहरी प्रभावों का। विचार एक दूत है। उसका कार्य है भीतर के संदेश को बाहर पहुंचा देना। जैसा विचार वैसा आन्तरिक व्यक्तित्व। जैसा आन्तरिक व्यक्तित्व वैसा विचार। विचार मूल नहीं है, मूल है भाव। विचार की पवित्रता का सूत्र है भाव-परिवर्तन। जैसे-जैसे भाव विशुद्धि घटित होगी, भाव पवित्र होते चले जाएंगे। जिसने भाव को बदलने का मंत्र सीख लिया, उसने विचारों को बदलना सीख लिया। आचार, विचार और व्यवहार की विशुद्धि से ही चेतना का ऊर्ध्वारोहण संभव बन सकता है। 'विचार को बदलना सीखें' में इस सचाई को समझने का ही नहीं, जीने का पथ भी प्रस्तुत है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार को बदलना सीखें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदर्श साहित्य संघ प्रकाशन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार को बदलना सीखें

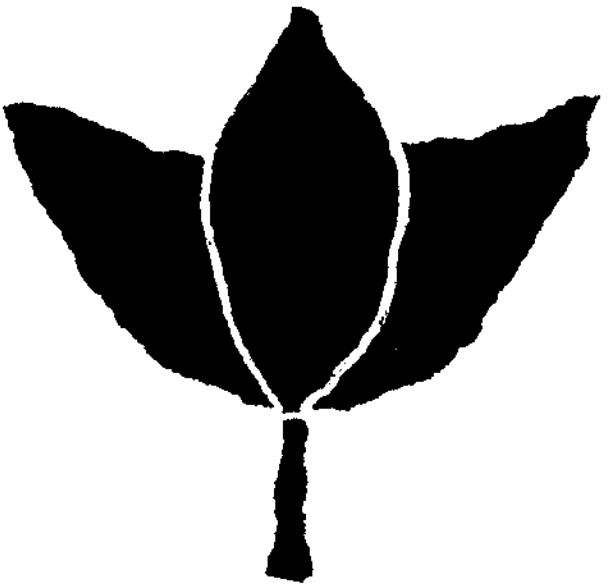

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

© आदर्श साहित्य संघ

विचार को बदलना सीखें

लेखक : आचार्य महाप्रज्ञ

सम्पादक : मुनि धनंजयकुमार

प्रकाशक : कमलेश चतुर्वेदी
प्रबंधक : आदर्श साहित्य संघ
२१०, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-११०००२

संस्करण : सन् २००५

मूल्य : साठ रुपये

मुद्रक : आर-टेक आफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली-११००३२

VICHAR KO BADALNA SEEKHEIN by Acharya Mahaprajna **Rs. 60.00**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तुति

विचार का तात्पर्य है गतिशीलता। जो गतिशील होता है, वह सब विचार नहीं होता किन्तु विचार अवश्य गतिशील होता है। गतिशीलता परिवर्तन का संकेत-सूत्र है। एकांगी दृष्टिकोण वाला व्यक्ति विचार को भी बांधकर रखना चाहता है, इसीलिए विचार बहुत बार वंदनीय से अवंदनीय बन जाता है।

विचार भाव और मन की साझा सरकार है। विचार को बदलने का अर्थ होता है भाव को बदलना। नकारात्मक भाव नकारात्मक विचार को जन्म देता है और सकारात्मक भाव सकारात्मक विचार को। इसलिए विचार के मूल स्रोत पर ध्यान देना अधिक आवश्यक है। बहुत लोग मन से परे जाने की बात नहीं सोचते, फलतः उलझनें बढ़ जाती हैं। सुलझने का मार्ग है मन की भूमिका का अतिक्रमण कर चेतना के निकट पहुंच जाना।

सकारात्मक भाव, सकारात्मक विचार और सकारात्मक जीवनशैली में गहरा संबंध है। प्रशस्त जीवनशैली प्रशस्त भाव को जन्म देती है और प्रशस्त भाव प्रशस्त विचार को जन्म देता है। इसलिए इस त्रिपदी के सामंजस्यपूर्ण समन्वय पर दृष्टिपात करना बदलने की प्रक्रिया का पहला चरण है।

हम जो हैं, वही न रहें, आगे बढ़ें। हम जो सोचते हैं, उसे सीमा न मानें, तट के पार जाना भी सीखें। बदलने का सूत्र अपने आप हाथ लग जायेगा।

प्रस्तुत पुस्तक के सम्पादन में मुनि धनंजय कुमार ने निष्ठापूर्ण श्रम किया है।

जैन विश्व भारती
१ जनवरी, १९९६

—आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपादकीय

• विचार
आचार का आधार
उससे संचालित है व्यवहार
व्यक्तित्व का दर्पण
मनस्विता का लक्षण
वर्तमान का उच्छ्वास
भविष्य का विश्वास
वह स्मृति नहीं है
कल्पना भी नहीं है।
किन्तु है स्मृति और कल्पना से उपजा
एक नया संसार
महाप्रज्ञ के शब्दों में
भाव और मन की साझा सरकार।
प्रश्न है--क्यों बदले विचार ?
जिसका कार्य है सतत संचार
पवित्रता या अपवित्रता
मात्र भावों का उपहार
महाप्रज्ञ कहते हैं—
विचार को बदलें
इसका तात्पर्य है
भावों को बदलें
यदि हो जाए भावों की शुद्धि
घटित होगी
विचार और आचार की शुद्धि
चर्या और व्यवहार की शुद्धि
अर्थ और आहार की शुद्धि
बन जायेगा जीवन पवित्र
चैतन्य, जैसे निर्मल इत्र।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महाप्रज्ञ का मौलिक सृजन
देता है एक नया जीवन-दर्शन
संक्रमण का यह युग
बन जायेगा सतयुग
अमंगल विचारों से
अनावश्यक विचारों से
अर्थहीन विचारों से
यदि हम मुक्ति पाएं
विधायक भाव बढ़ाएं
पवित्र विचारों को जीयें
तो आयेगा एक दिन
निर्विचारता का क्षण।
यह विचारातीत स्थिति
देगी एक नई विभूति
जागेगी स्वयं को पाने की ललक
मिलेगी अपने अस्तित्व की झलक
समस्या की तमिस्रा में
समाधान की दीपशिखा
जल उठेगी पाठक के हृदय में
और उसे पहुंचाएगी अंतःसदय में।

जैन विश्व भारती
लाडनूं
१२ जनवरी १९९६

–मुनि धनंजय कुमार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रम

जीवन की नई व्याख्या	. . . . .	१
विचार को देखना सीखें	. . . . .	१२
विचार को बदलना सीखें	. . . . .	२२
धर्म और शिक्षा	. . . . .	३४
धर्म और शान्ति	. . . . .	४४
धर्म और स्वास्थ्य	. . . . .	५४
दूरदर्शन और अन्तर्दर्शन	. . . . .	६५
जागरूकता और जीवन व्यवहार	. . . . .	७३
हृदय रोग, कारण और निवारण	. . . . .	८६
जीवन की शैली कैसी हो ?	. . . . .	९६
जीवनशैली के नौ सूत्र	. . . . .	१०४
जीवनशैली और स्वास्थ्य	. . . . .	११६
स्वास्थ्य अध्यात्म और विज्ञान के संदर्भ में	. . . . .	११४
प्रकृति के साथ कैसे जीएं ?	. . . . .	१३१
हिमकुण्ड और अग्निकुण्ड दोनों आदमी में	. . . . .	१३७
अपराध निरोध का मंत्र : चेतना का परिष्कार	. . . . .	१४५
पारिवारिक जीवन और शान्त सहवास	. . . . .	१४९
शान्ति और शक्ति के साथ जीयें	. . . . .	१५८
कैसे करें संस्कारों का निर्माण ?	. . . . .	१६९

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार
को
बदलना
सीखें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन की नई व्याख्या

भगवान् महावीर ने दो नय बतलाए—निश्चयनय और व्यवहारनय। निश्चयनय वास्तविक सत्य है। हम क्या करें, किसका उपयोग करें ? इस प्रश्न के उत्तर में बहुत संक्षेप में कहा जा सकता है—हम निश्चय में रहें और व्यवहार में जीवन चलाएं। रहना अपने भीतर और व्यवहार चलाना बाहर। जो आदमी भीतर में नहीं रहता, कोरा बाहर ही बाहर रहता है, वह बहुत सारी उलझनें पैदा कर लेता है। जो केवल भीतर रहे, बाहर न रहे, वह जीवन जी नहीं सकता। हमारे सामने ये दो आयाम हैं। भीतर में रहना यानी वस्तुसत्य में रहना सचाई को पाने के लिए जरूरी है। व्यवहार में रहना जीवन के लिए जरूरी है। सत्य जीते जी पाया जा सकता है, मरने के बाद कोई क्या पायेगा ? हमें जीना भी है और सत्य को भी पाना है। दोनों बहुत जरूरी हैं। दोनों के लिए दो मार्ग स्पष्ट हैं।

त्रिमूर्ति है व्यवहार

हमारा व्यवहार किससे चलता है ? इस प्रश्न के उत्तर में चिंतन किया गया। चिंतन के बाद निर्णय किया गया—मनुष्य का व्यवहार वाणी के द्वारा संपादित है। भाषा के द्वारा वह सारे कार्यक्रमों को चला रहा है। भाषा न होती तो हमारा व्यवहार बहुत सिमट कर रह जाता, बहुत संकुचित हो जाता। भाषा है इसलिए हमारे व्यवहार का बहुत विस्तार हुआ है।

व्यवहार के तीन रूप हैं—प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा। मनुष्य प्रवृत्ति करता है, निवृत्ति करता है और उपेक्षा करता है। यह त्रिमूर्ति व्यवहार है। हमारा व्यवहार सदा एक प्रकार का ही नहीं होता, प्रश्न हो सकता है—व्यवहार के ये तीन रूप क्यों ? एक ही प्रकार क्यों नहीं ? उसका आधार तीन हेतु है। कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो हेय हैं, छोड़ने योग्य हैं। कुछ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थ ऐसे हैं जो उपादेय हैं, ग्रहण करने योग्य हैं और कुछ पदार्थ ऐसे हैं जो न स्वीकार करने योग्य हैं और न छोड़ने योग्य।

प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा

दो आदमी जा रहे हैं। चलते-चलते रास्ते में चट्टान आ गई। एक ने कहा—हट कर चलो, बीच में चट्टान है, ठोकर खा जाओगे। वह हट जाता है, निवृत्त हो जाता है और दूसरे रास्ते से प्रवृत्त होता है। दोनों चले जा रहे हैं, प्रवृत्ति भी है और निवृत्ति भी है। बीच में कोई तिनका आ गया। वह उपेक्षणीय है, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता। रास्ते में आग जलती हुई मिली। तत्काल कहेगा—अरे ! बचना, कहीं आग की लपेट में आकर झुलस न जाएं। वह आग से निवृत्त होता है और दसूरे रास्ते में प्रवृत्त होता है। चलते-चलते राख की ढेरी आ गयी। वह बुझी हुई आग है। न उससे बचने की जरूरत, न फंसने की जरूरत, उपेक्षणीय है वह। उससे कोई भय नहीं है, खतरा नहीं है। इसका अर्थ है—जिससे खतरा होता है, उससे मनुष्य निवृत्त होना चाहता है। जिससे लाभ होता है, उसमें प्रवृत्ति करना चाहता है। जिससे न खतरा होता है और न लाभ, उसमें न प्रवृत्ति और न निवृत्ति। उसकी उपेक्षा हो जाती है।

मौन क्यों ? चिल्लाए क्यों ?

कुछ बच्चे खेल रहे थे। कुछ देर बाद एक गिरगिट निकला। बच्चों ने देखा, गिरगिट आया और चला गया। किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया। थोड़ी देर बाद एक सांप निकला। जैसे ही सांप दिखाई दिया, बच्चे भय से चिल्लाने लगे। बचने के लिए भागने लगे। सुरक्षा की तैयारी करने लगे। सबने मिलकर सांप को मार दिया। एक बच्चे के मन में प्रश्न पैदा हुआ—पहले जो जन्तु दिखाई पड़ा, उसे देखकर किसी पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, कोई बोला नहीं। जब सांप दिखाई पड़ा, सब भय से चिल्ला पड़े। गिरगिट को देखकर सब मौन क्यों रहे ? सांप को देखकर सब क्यों चिल्लाए ? एक समझदार ने उसकी शंका का समाधान करते हुए कहा—'पहले जो दिखाई पड़ा था, वह गिरगिट था। आकार में वह सांप से मिलता-जुलता है, पर खतरनाक नहीं होता, किसी को वह काटता नहीं। दूसरा जो जन्तु आया

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और जिसे मार दिया गया, वह जहरीला है, खतरनाक है, इसके काटने पर आदमी मर जाता है इसलिए सब भयभीत हो गये, उसे मार दिया।'

व्यवहार होता है ज्ञान के साथ

जिससे खतरा होता है, उससे आदमी निवृत्त होना चाहता है, दूर होना चाहता है। जिससे खतरा नहीं होता, उसकी अपेक्षा कर देता है। जो हितकर होता है, उसकी ओर आदमी जाना चाहता है, प्रवृत्ति करना चाहता है। हमारी प्रवृत्ति के, व्यवहार के ये तीन रूप हैं--निवृत्ति, प्रवृत्ति और उपेक्षा। इनके तीन हेतु हैं--हेय, उपादेय और उपेक्षणीय। हमारे जीवन का सारा व्यवहार इन तीनों में सिमट जाता है। यह सारा व्यवहार पैदा होता है अनुभव के साथ, ज्ञान के साथ। आदमी जानता है और जानने के बाद व्यवहार करता है। जिस वस्तु के बारे में हमारी जानकारी नहीं है, उसके बारे में हमारा कोई व्यवहार नहीं होता। व्यवहार जानने के बाद ही होता है। सामने एक मोती पड़ा है, किन्तु जिस व्यक्ति को मोती के बारे में कोई जानकारी नहीं है, वह उसके प्रति आकृष्ट नहीं होता। संस्कृत साहित्य में कहा जाता है--एक जंगली आदमी, आदिवासी या भील के लिए मोती का कोई महत्त्व नहीं होता है। एक शेर आया और महान् वैयाकरण को खा गया। उसके लिए वैयाकरण का कोई मूल्य नहीं है। उसके लिए तो वह मात्र खाने की चीज है। हमारे व्यवहार में वे ही चीजें आती हैं, जिनका मूल्य या अवमूल्य हमारी समझ में आ जाता है। बहुत सारी अमूल्य वनस्पतियां हैं। उनके बारे में हमारी कोई जानकारी नहीं है। वे हमारे लिए बेकार के पौधे हैं। एक कुशल वैद्य उन्हें देखता है, उसकी आंखों में चमक आ जाती है। वह उन्हें देखकर मुग्ध हो जाता है, सोचता है, कितनी मूल्यवान् और उपयोगी वनस्पतियां हैं। जो वनस्पतियां एक सामान्य आदमी के लिए मूल्यहीन होती हैं, वे एक वैद्य के लिए उपयोगी और मूल्यवान् बन जाती हैं।

प्रवृत्ति और निवृत्ति का चक्र

भाषा और ज्ञान--ये दोनों हमारे व्यवहार के प्रवर्तक या नियामक हैं। हम जानते हैं और जानने के बाद व्यवहार करते हैं, किसी को कहते हैं--प्रवृत्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जाओ, किसी को कहते हैं—निवृत्त हो जाओ और किसी को कहते हैं, कोई बात नहीं, छोड़ो। धर्म को प्रवर्तक लक्षण माना गया है—**चोदनालक्षणो धर्मः**। कहा जाता है कि धर्म में प्रवृत्ति करो। अधर्म तुम्हारे लिए अहितकर है, इसलिए उससे निवृत्ति करो। यह प्रवृत्ति और निवृत्ति का चक्र सतत चल रहा है। ध्यान करो और चंचलता को छोड़ो, यह एक प्रेरणा है। विवेक चंचलता को कम करने या छोड़ने की बात कहता है। आदमी उलझ जाता है। वह सोचता है—यदि चंचल प्रवृत्ति अथवा सक्रियता को कम कर दिया तो हम निठल्ले बन जायेंगे। आज जो विकास हुआ है, वह बहुत कुछ चंचलता के कारण हुआ है। इतने पदार्थ, इतने संसाधन और उपकरण—ये सब ध्यान से बने हैं या चंचलता से बने हैं ? निश्चय ही चंचलता से बने हैं। अगर सब ध्यान कर बैठ जाते, हाथ पर हाथ धर कर बैठ जाते तो न ये बहुमंजिली इमारतें बनतीं, न मोटरकार और हवाईजहाज बनते, खेतीबाड़ी भी नहीं होती। हिन्दुस्तान में ध्यान का बहुत विकास हुआ किन्तु अगर पूरा देश ध्यानी बन जाता तो खाने के लिए फिर बाहर से ही मंगाना पड़ता। मंगाता भी कौन ? भूखे ही मरना पड़ता।

चिन्तन की भाषा

बड़ी समस्या है। एक ओर हम कहते हैं कि ध्यान करो, चंचलता को कम करो, निष्क्रिय बनो, दूसरी ओर हमारा सारा काम सक्रियता से चल रहा है, प्रवृत्ति की बहुलता से चल रहा है। आज का संसार तो इतना प्रवृत्ति बहुल हो गया है कि इसमें ध्यान की बात करना ही हास्यास्पद लगता है। आज का व्यक्ति इस भाषा में सोचता है—किसे फुर्सत है दो-चार घंटा आंख मूंदकर निकम्मा बैठने की। फिर हमारा विकास कैसे होगा ? पिछड़ नहीं जायेंगे हम ?

आखिर करें क्या ? रहना सचाई में है, किन्तु जीना तो व्यवहार में है। जहां व्यवहार है वहां प्रवृत्ति, निवृत्ति और उपेक्षा—तीनों चलेंगे। कोरी निवृत्ति की बात वहां समझ में नहीं आती इसीलिए सामान्य आदमी विवेक नहीं कर पाता किन्तु कुछ विवेक करने वाले भी दुनिया में होते हैं। प्राचीन संस्कृति साहित्य का सूत्र है—क्षीर-नीर-विवेकवत् यथा हंसः, जैसे हंस दूध और पानी का विवेक कर देता है। यह हंसों के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहा गया है, वैसे ही मछलियां भी दूध और पानी को अलग कर देती हैं, नींबू भी दूध और पानी को अलग कर देता है। यह विवेक है, विवेचन है, पृथक्करण है।

विवेक करें

राजा ने अपने कर्मचारियों से पूछा—बताओ, चीनी और रेत आपस में मिल गयी, उनका विवेक कैसे किया जाए, उन्हें अलग कैसे किया जाए ? पानी डालने से तो कुछ हो सकता है, किन्तु पानी डाले बिना दोनों को अलग कैसे किया जाए ? आज कुछ साधन भी हो गये हैं, किन्तु पहले कुछ भी नहीं था, फिर भी एक बुद्धिमत्तापूर्ण उत्तर दिया गया—'महाराज, उस चीनी मिली रेत को जमीन पर डाल दें। चींटियां चीनी को खा जायेंगी, रेत रह जाएगी।'

हमें भी विवेक करना है—चीनी अलग हो जाए, रेत अलग हो जाये, दूध अलग हो जाये और पानी अलग हो जाये। किन्तु व्यक्ति विवेक नहीं कर पाता, उलझ जाता है, इसीलिए हर आदमी प्रवृत्ति की ओर दौड़ता है, निवृत्ति की ओर नहीं देखता।

प्रवृत्ति बहुलता का परिणाम

ऐसा लगता है—आज मनुष्य का सारा दृष्टिकोण एकांगी बन गया है। इस प्रवृत्ति की बहुलता और सक्रियता ने मानसिक बीमारियों और तनावों को जन्म दिया है, चिंतन की स्वस्थता को कम किया है। प्रवृत्ति की बहुलता होगी तो हमारा चिंतन साफ-सुथरा और नपा-तुला नहीं होगा। उसमें बहुत सारा कचरा और कूड़ा-करकट भी जमा हो जायेगा। व्यवहार के क्षेत्र में हमने निवृत्ति की बात को भुला दिया, केवल प्रवृत्ति को पकड़ लिया। एक भाई से पूछा—'तुम कभी ध्यान करते हो, अपने आपको देखने का प्रयत्न करते हो ?' उसने बिल्कुल गढ़ा-गढ़ाया उत्तर दिया—'छह—सात बजे उठता हूं, फिर तैयार होकर दुकान पर चला जाता हूं। रात को दस-ग्यारह बजे लौट कर आता हूं। ऐसे में ध्यान के लिए समय कहां मिलता है ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्यों होते हैं रोग ?

आज का युग इतना यांत्रिक बन गया है, इतनी व्यस्तता बढ़ गयी है कि व्यक्ति ध्यान के लिए समय कब निकाले ? उसे यह सोचने का समय भी नहीं है कि इतनी खतरनाक और अहितकर चीज से हटना चाहिए। रोग एक खतरा है और उससे निवृत्त होना जरूरी है। बहुत सारे लोग अपनी प्रवृत्ति की बहुलता के कारण रोगों को स्वयं निमंत्रित करते हैं। आज स्वास्थ्य की पूरी मीमांसा की जाए तो यह निष्कर्ष निकलेगा—साठ-सत्तर प्रतिशत रोग प्रवृत्ति की बहुलता के कारण होते हैं। जितनी मानसिक बीमारियां हैं, वे निरंतर प्रवृत्ति का परिणाम हैं। बहुत सारी खतरनाक बीमारियों के पीछे प्रवृत्ति की यह निरंतरता ही है। एक नियम जैसा ही बना लिया गया—एक कर्मचारी या मजदूर आठ घंटे अपनी ड्यूटी देता है, काम करता है और मालिक बारह-चौदह घंटा काम करता है। इसका मतलब है—वह छोटा कर्मचारी मालिक से बड़ा कर्मचारी है। मालिक इस अर्थ में बड़ा मजदूर है, क्योंकि उसे डबल ड्यूटी देनी पड़ती है। जहां प्रवृत्ति की इतनी संकुलता हो जाती है, वहां न धर्म की बात चलती है, न आराधना की बात, न केवल अपने आप को देखने की बात, वहां तो बस प्रवृत्ति का चक्र चलता है।

बढ़ी है अम्लता

आज के युग में एसिडीटी की बीमारी बहुत बढ़ी है। प्रवृत्ति के साथ अम्लता का बढ़ना स्वाभाविक है। अम्लता बढ़ेगी तो बीमारियां भी बढ़ेंगी। अम्लता और क्षार का हमारे शरीर में एक संतलन होना चाहिए। यदि हम संतुलन को कायम नहीं रखते हैं तो हमें बीमारी का सामना करने को तैयार रहना चाहिए। हमारा अधिकांश भोजन अम्लता प्रधान होता है, क्षार प्रधान कम होता है। यह संतुलन नहीं रहता है, इसलिए बीमारियां बढ़ती हैं। अन्न खाया, चीनी खाई, मिठाइयां खाई, घी खाया—ये सब अम्लता पैदा करने वाले तत्त्व हैं। ठीक यही बात हमारे भीतर भी लागू होती है—हम केवल प्रवृत्ति के द्वारा अम्लता को बहुत बढ़ा लेते हैं, क्षार की मात्रा कम करके बीमारियों को निमंत्रित करते हैं। प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों के संतुलन की जरूरत है। आदमी में ऐसा कोई लोभ है, ऐसी कोई वासना है कि वह संतुलन नहीं कर पाता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महात्यागी है राजा

एक राजा किसी तपस्वी के पास गया और उन्हें नमस्कार किया। तपस्वी फक्कड़ स्वभाव का था। पता नहीं उसके मन में क्या आया उसने खड़े होकर राजा को नमस्कार किया। जो लोग राजा के साथ गये थे, यह बात उनकी समझ में नहीं आयी। राजा एक संन्यासी को नमस्कार करता है, यह व्यावहारिक बात है, किन्तु तपस्वी त्यागी व्यक्ति राजा को नमस्कार करे, यह सर्वथा विपरीत बात है। एक व्यक्ति ने पूछ लिया—'महात्मन् ! राजा ने आपको नमस्कार किया, यह तो ठीक बात है, किन्तु आपने उठकर नमस्कार क्यों किया ? इसका रहस्य क्या है ?

संन्यासी ने पूछा—'राजा ने मुझे नमस्कार क्यों किया ?

उसने कहा—'आप त्यागी-तपस्वी हैं, इसलिए नमस्कार किया।'

'मैं त्यागी हूं, किन्तु राजा तो महात्यागी है, इसलिए मैंने नमस्कार किया।'

'राजा महात्यागी कैसे हुआ ?'

'मेरी बात ध्यान से सुनो। मैंने संसार को छोड़ा है, पदार्थ को छोड़ा है, नश्वर चीज को छोड़कर अविनाशी आत्मा को पाने का प्रयत्न किया है। मैंने तो नश्वर को छोड़कर अनश्वर को पाने का प्रयास किया है, किन्तु यह राजा भोगों में फंसा हुआ है, इसने शाश्वत और अविनश्वर तत्त्व को छोड़कर नश्वर और अशाश्वत तत्त्व को अपनाने का कार्य किया है। बताओ, त्याग मेरा बड़ा है या इस राजा का '

विकसित होने का मापदण्ड

बहुत बड़ा प्रश्न हमारे सामने है। एक ओर नश्वर के लिए अविनश्वर और शाश्वत को त्यागना, दूसरी ओर अविनश्वर और शाश्वत के लिए नश्वर और अशाश्वत को त्यागना। जो लोग पदार्थवादी हैं और पदार्थ की दृष्टि से ही सारी उन्नति, सभ्यता और संस्कृति की माप करते हैं, उनकी दृष्टि में मूल्य केवल पदार्थ का है। उनकी दृष्टि में पदार्थ ही किसी देश के विकसित होने का मापदण्ड है। आज पूरा संसार तीन भागों में बंटा हुआ है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. विकसित राष्ट्र।
२. विकासशील या विकासोन्मुख राष्ट्र।
३. अविकसित राष्ट्र।

विभाजन का आधार है पदार्थ

बहुत सारे देश हैं जो अविकसित हैं। हिन्दुस्तान विकासशील देश है। अमेरिका, ब्रिटेन, फ्रांस आदि विकसित राष्ट्र कहे जाते हैं। इन तीन वर्गों में पूरा संसार, पूरी मानव जाति बंटी हुई है। विकसित राष्ट्र वे हैं जहां गरीबी नहीं है, पदार्थ की बहुलता है, उद्योग बहुत हैं, शिक्षा का स्तर ऊंचा है। जहां उद्योग लग रहे हैं, शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है, गरीबी मिटाने के प्रयत्न हो रहे हैं, आर्थिक समृद्धि कुछ बढ़ी है, वे विकासशील राष्ट्र हैं। जहां शिक्षा का प्रतिशत न्यूनतम है, आर्थिक संसाधनों की अल्पता है, हर चीज के लिए जो दूसरे देशों पर निर्भर हैं, वे अविकसित राष्ट्र हैं। पूरी मानव जाति का विभाजन केवल पदार्थ के आधार पर अथवा केवल बौद्धिक विकास के आधार पर हुआ है। मूल बात को भुला दिया गया।

विकास हर क्षेत्र में

मूल बात यह है कि हमारा भावनात्मक और मानसिक विकास कितना हुआ है। यह विडंबना ही है कि इनके विकास को आज के युग में कोई मूल्य नहीं दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ है कि आज विकसित राष्ट्र के लोग जितनी नींद की गोलियां खा रहे हैं, उतने अविकसित और विकासशील राष्ट्र के लोग नहीं। विकसित राष्ट्र के लोग जितनी मानसिक व्यथा से पीड़ित हैं, मानसिक तनावों से ग्रस्त हैं, उतने विकासशील और अविकसित राष्ट्र के लोग नहीं। समाचारपत्र में पढ़ा—प्रति साढ़े तीन मिनट में एक तलाक जापान में हो रहा है। वहां एक वर्ष में तलाक का आंकड़ा एक लाख अस्सी हजार का है। ऐसा विकसित राष्ट्र में ही हो सकता है। ऐसा लगता है—तलाक के मामले में भी जैसे वह विकसित राष्ट्र है। जब प्रत्येक क्षेत्र में विकास हो रहा है तो तलाक के मामले में ही पीछे क्यों रहे ?

प्रश्न है—ऐसा क्यों होता है ? जब तक हम मानसिक और भावनात्मक विकास को विकास की सीमा में नहीं लायेंगे, तब तक मनुष्य जाति को

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ये परिणाम भुगतने पड़ेंगे। यह नहीं कहा जा सकता—आर्थिक विकास और पदार्थ विकास जरूरी नहीं है। वह जरूरी है, किन्तु व्यवहार को चलाने वाले के लिए उतना जरूरी नहीं है जितना जरूरी मानसिक और भावनात्मक विकास है। पूरी मानवजाति की पीड़ा और वेदना को हम समझ सकें तो ऐसा प्रतीत होगा—यह एक बड़ी करुण कहानी है।

रुक्का किसने दिया ?

एक दार्शनिक तपस्वी किसी गांव में आया। उसकी बहुत दूर-दूर तक बड़ी ख्याति और प्रसिद्धि थी। सम्राट् के मन में जिज्ञासा जागी—ऐसे दार्शनिक से क्यों न मिला जाये ? एक आदमी उस दार्शनिक के पास पहुंचा और उसके हाथ में एक रुक्का थमा दिया। दार्शनिक ने पूछा—'तुम कौन' ? वह बोला—'मैं सम्राट् का कर्मचारी हूं। सम्राट् ने ही यह रुक्का आपको देने के लिए कहा है।' दार्शनिक ने कहा—'तुम्हें कैसे पता कि सम्राट् ने ही दिया है। क्या सम्राट् से तुम मिलकर आए हो ? कर्मचारी ने कहा—'नहीं सम्राट् ने नहीं, मेरे अधिकारी ने मुझे रुक्का देते हुए कहा था—यह सम्राट् ने दिया है, तुम स्वामीजी तक इसे पहुंचा दो।' दार्शनिक ने कहा—'चलो उस अधिकारी के पास'। अधिकारी के पास आकर पूछा—'क्या यह रुक्का सम्राट् ने दिया है ?'

अधिकारी बोला—'हां सम्राट् ने ही दिया है।'

'क्या सम्राट् ने अपने हाथ से तुम्हें दिया ?

'नहीं, सम्राट् ने नहीं, एक सैनिक ने लाकर मुझे दिया कि यह सम्राट् का रुक्का आप तक पहुंचा दिया जाए।'

तीनों अब उस सैनिक के पास गये पूछा—'यह रुक्का किसने दिया ?

'सम्राट् ने दिया' ?

'तुम मिलकर आए सम्राट् से ?

'नहीं, मुझे मंत्री ने दिया।'

चारों मंत्री के पास पहंचे। मंत्री ने कहा—'यह रुक्का मुझे सम्राट् ने नहीं, उनके निजी सेवक से प्राप्त हुआ है।'

वे उस सेवक के पास गये, पूछा—'यह रुक्का किसका है ?

'सम्राट् का है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'तुम्हें पता है कि सम्राट् का ही है ?

'हां, किन्तु आप 'किसका है' इसी पचड़े में पड़े रह गये। इसमें सम्राट ने आपको गुरु बनने के लिए लिखा था। आपने इसे खोलकर पढ़ने की भी जरूरत नहीं समझी और 'किसका है' 'किसने दिया' इसी की खोजबीन करते रह गये। अब समय बीत गया, इसका कोई महत्त्व नहीं रहा।'

ऐसा लगता है—आज के संसार की यही स्थिति हो रही है। रुक्के को खोलकर पढ़ा नहीं जा रहा है। रुक्का कहां से आया, बस इसी में सब उलझकर रह गये हैं। मूल प्रश्न को हम नहीं छू रहे हैं। केवल बाहर की बातों में उलझे हुए हैं। हम पदार्थ में इतने उलझ गये कि पदार्थ को चलाने वाला जो फेक्टर है, उसे पढ़ने की जरूरत ही नहीं समझते।

भुला दिया है निर्माता को

पदार्थ और चेतना ये दो बातें हैं। पदार्थ का संचालक, नियामक और प्रवर्तक चेतना है। पदार्थ का निर्माण करने वाली चेतना है। कम्प्यूटर चाहे जितना विकसित हो गया हो, पर उसका निर्माण करने वाली चेतना है। चैतन्य के बिना कोई निर्माण नहीं हो सकता। हमने निर्माता को तो बिल्कुल भुला दिया और निर्मित वस्तु को पकड़ कर बैठ गए। कर्ता को भुला दिया और कृति में उलझ गये। प्रेक्षाध्यान का प्रयोजन है—पदार्थ और चेतना का विवेक करना, यह स्पष्ट समझ लेना कि पदार्थ, पदार्थ है और चेतना, चेतना। हम केवल पदार्थ के विकास के आधार पर मानवजाति को न बांटें, इसके साथ चेतना को भी जोड़ें। जिसकी चेतना जागृत नहीं हैं, जिसकी चेतना में कषाय, क्रोध, भय, ईर्ष्या आदि प्रबल है, वह राष्ट्र पदार्थ की दृष्टि से चाहे कितना ही विकसित हो गया हो, उस राष्ट्र को विकसित कहने में बहुत कठिनाई है। एक राष्ट्र विकसित तो कहलाता है, किन्तु यदि वह एक मानव से घृणा करता है रंगभेद के आधार पर, गोरे और काले के आधार पर तो उस राष्ट्र को विकसित कहने में मुझे तो कठिनाई है। एक राष्ट्र विकासशील कहलाए और दूसरे को अछूत माने तो यह उसके विकास पर प्रश्नचिह्न है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मूल्य-मीमांसा का आधार

जब तक हम चेतना के स्तर पर मानदण्ड नहीं बनाएंगे, हमारी मूल्य की सारी कसौटियां गलत हो जाएंगी। मूल्य का प्रश्न आज महत्त्वपूर्ण बन रहा है किन्तु जब तक चेतना को सामने रखकर हम मूल्य का निर्धारण नहीं करेंगे, केवल पदार्थ के आधार पर मूल्य की मीमांसा करेंगे तो हमारा सारा मूल्यशास्त्र गलत साबित होगा।

ध्यान का अर्थ है—जीवन की नई व्याख्या करना। हमें जीवन की नयी व्याख्याा करनी होगी, मूल्यों की नयी व्याख्या करनी होगी। उसका सूत्र यह है—जहां आर्थिक विकास, पदार्थ का विकास, भौतिक विकास हो रहा है, वहां उसके साथ-साथ हमारी चेतना का भी विकास हो। जब चेतना का विकास होगा तब जाति, रंग और अर्थ के आधार पर आदमी आदमी से घृणा नहीं करेगा। यह दृष्टिकोण विकसित होगा, तो पदार्थ के अभाव में भी मानव समाज को विकसित कहा जा सकेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार को देखना सीखें

मनुष्य मनस्वी प्राणी है। उसके पास मन है और विकसित मन है। पशु के पास भी मन है, पर उतना विकसित नहीं है जितना मनुष्य का है। पशु भी थोड़ा सोचता है, स्मृति भी करता है, किन्तु मनुष्य मन के द्वारा जितना गूढ़ चिंतन कर सकता है, पशु कभी नहीं कर सकता। मनुष्य ने जितना सोचा है, पशु ने कभी नहीं सोचा। आज तक के इतिहास में एक भी पुस्तक ऐसी नहीं है, जो किसी पशु के चिंतन से प्रसूत हुई हो। विचार के क्षेत्र में एक भी उसकी देन नहीं है, जिसका मूल्य आंका जा सके। कारण स्पष्ट है—मनुष्य को जैसा शरीर मिला है, जैसी स्नायविक प्रणाली या नाड़ीतंत्र मिला है, विकसित मस्तिष्क मिला है, वैसा पशु या अन्य किसी प्राणी को नहीं मिला है। पशु मन वाला तो है, पर मनस्वी नहीं है। जैसे दो-चार रुपये से कोई धनपति नहीं कहलाता, वैसे ही केवल मन होने मात्र से कोई पशु मनस्वी नहीं कहलाता विचारशील या चिंतनशील नहीं कहलाता। मनुष्य अपनी शारीरिक विशेषता के कारण मनस्वी है। बहुत क्षमता है उसके मन और मस्तिष्क में। मनुष्य को विकसित मन मिला है, इसका मतलब यह है कि उसे बहुत चिंतन और विचार करना चाहिए। किन्तु जब ध्यान की अवस्था में कोई विचार आता है, तब साधक शिकायत करता है कि ध्यानकाल में मन में बहुत विचार आते हैं।

विचार को क्यों रोकें ?

विचार आना मनुष्य होने का लक्षण है इसलिए विचार तो आएंगे। प्रश्न है विचार को हम बन्द क्यों करें ? विचार का तो विकास करना है। ध्यान में तो और भी ज्यादा विचार आने चाहिए। उन्हें रोकने की बात क्यों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाए ? बहुत सारे लोग यह समस्या प्रस्तुत करते हैं—ध्यान करते हैं, किन्तु मन में विचार बहुत उठते हैं, विचार का स्रोत-सा खुल जाता है। क्या निर्विचार या विचारशून्य होना चाहते हैं ? विचारशून्य व्यक्ति तो पत्थर है। क्या आप भी पत्थर बन जाना चाहते हैं ? ध्यान का काम यदि पत्थर बनाना है तो फिर ध्यान न करना ही अच्छा है।

हमें बहुत स्पष्ट रूप से समझना है कि विचार मनस्वी व्यक्ति की स्वाभाविक प्रक्रिया है। विचार निरंतर आते रहते हैं। ध्यान में यह समस्या इसलिए आती है क्योंकि हमने मान लिया है कि ध्यान का मतलब विचार का न होना है। ध्यान का प्राथमिक अर्थ विचार का न होना नहीं है। हमारी कोशिश यह होनी चाहिए कि विचार अनावश्यक न आएं। विकार पैदा करने वाले विचार न आएं। भटकाने वाले विचार न आएं। सबसे पहले इस पर नियंत्रण होना चाहिए।

विचारों की भूलभुलैया

विचारों का बहुत बड़ा भटकाव है, भूलभुलैया है। आदमी भूलभुलैया के भीतर प्रवेश करता है तो उसमें फंसता ही जाता है। बाहर निकलने का रास्ता खोज नहीं पाता। कानन की भूलभुलैया तो बहुत छोटी होती है। लखनऊ का इमामबाड़ा तो इस दृष्टि से कुछ भी नहीं है। यह विचारों की भूलभुलैया इतनी बड़ी है कि जो उलझ गया, वह उलझ गया। उसके लिए निकल पाना सहज नहीं होता। उसे निकलने का कोई दरवाजा आसानी से नहीं मिल पाता।

एक अन्धा आदमी मीलों तक फैली एक चहारदीवारी में प्रवेश कर गया। निकलने और प्रवेश करने के लिए उसमें मात्र एक ही दरवाजा था। भींत के सहारे चलते-चलते अंधे आदमी ने दरवाजा ढूंढ़ने की कोशिश की। जब दरवाजा निकट आया तो उसके सिर में खुजली आ गयी। सिर खुजलाने के उस एक क्षण में ही वह चूक गया और दरवाजे से आगे बढ़ गया। अब पुनः दरवाजा कब आएगा ?

ध्यान का अर्थ

ऐसी ही स्थिति आज मनुष्य की है। विचारों का इतना भटकाव है कि जहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भी दरवाजा आने को होता है, कहीं न कहीं खुजली शुरू हो जाती है। हम बाहर निकलने से चूक जाते हैं। प्रश्न है हम क्या करें ? क्या विचार करना छोड़ दें या विचार करना सीखें ? ध्यान का मतलब विचार को छोड़ना नहीं है। विचार आएं तो निराश नहीं होना है। ध्यान का मतलब है विचार के प्रति जागरूकता। विचार की प्रेक्षा करें, उसे देखें। ध्यान के दौरान जो भी विचार आए, मात्र उसे देखें। देखना एक बात है, उसके साथ बह जाना, विचार से भटक जाना बिल्कुल दूसरी बात है। ध्यान करने से विचार आने बन्द नहीं होंगे। निर्विचार की स्थिति न जाने कब आएगी ? वह आएगी भी तो चौबीस घंटे नहीं रहेगी। निर्विचार की स्थिति आधे घंटे भी बनी रह जाए तो यह एक बड़ी उपलब्धि है।

जागरूकता बढ़े

ध्यान का प्रयोजन है—जो हो रहा है, उसके प्रति जागरूक हो जाना। शरीर में रक्त का संचार हो रहा है। हमारी रक्तप्रणाली निरंतर अपना काम कर रही है। हृदय और नाड़ियां निरंतर धड़क रही हैं। इनके माध्यम से कितने रसायन बन रहे हैं, कितने प्रोटीन बन रहे हैं। शरीर में इतनी क्रियाएं संचालित हो रही हैं, जैसे कोई कारखाना चल रहा हो, क्या इन सबको बन्द कर दें ? ध्यान की अवस्था में श्वास भी चलता है, रक्त का प्रवाह भी चलता है, हृदय भी चलता है। जब इतने सारे चलते हैं तब एक बेचारे विचार ने ही क्या बिगाड़ा है ? केवल विचारों को ही क्यों रोकें ? ध्यान से हमें सीखना यह है कि शरीर में जो कुछ भी हो रहा है, उसके प्रति हम जागरूक बन जाएं। इतनी जागरूकता बढ़ जाए कि कहां क्या हो रहा है, उसे देख सकें। घर में प्रवेश के लिए दरवाजा है तो हर किसी के साथ चोर भी घुस सकता है। यह प्रबन्ध कर सकना बहुत मुश्किल है कि कोई आए ही नहीं। इतना किया जा सकता है कि घर में कोई प्रवेश करे तो मकान मालिक जागरूक रहे। वह यह देखता रहे कि आने वाला हितैषी है या अनिष्टकारी ? ध्यान का अर्थ है अपनी जागरूकता का विकास। हमारी जागरूकता बढ़ गयी तो हम अपने काम में सफल हो जाएंगे। जागरूकता नहीं बढ़ी तो मानना चाहिए कि जो काम होना चाहिए, वह पूरा नहीं हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आभार किस बात का ?

सबसे पहले बुरे विचारों को रोकने का अभ्यास करना चाहिए। आदमी बहुत बुरी बातें सोचता है, बुरा चिंतन करता है। एक आदमी डॉक्टर के पास गया। हाथ जोड़कर बोला—'डॉक्टर साहब, नमस्कार।' डॉक्टर ने उसकी ओर देखा और आने का कारण पूछा। उसने कहा—'बस ऐसे ही आभार व्यक्त करने चला आया।' डॉक्टर ने कहा—'मैंने तो तुम्हें कभी देखा ही नहीं, कभी तुम्हारी कोई चिकित्सा भी नहीं की, तुम्हें पहचानता भी नहीं, फिर आभार किस बात का ?' वह बोला—'आपने मेरी नहीं, किन्तु मेरे चाचा की चिकित्सा की है। वे जल्दी ही मर गये। उनकी सारी संपत्ति मुझे ही मिली है। आपने मेरा कल्याण कर दिया। इसलिए आभार तो व्यक्त करूंगा ही।'

अमंगल विचार न आएं

अमंगल विचार, नितान्त स्वार्थपरक विचार, दूसरे का अनिष्ट करने वाले विचार आते हैं, उन्हें रोकना है। ध्यान करने वाले व्यक्ति में इस प्रकार की चेतना जागनी चाहिए, जिससे बुरे विचार न आएं। यह ध्यान की पहली सफलता है—बुरे विचारों पर अंकुश लग जाना। जितने निषेधात्मक विचार हैं, बुरे विचार हैं, उनके निकलने का दरवाजा बन्द हो जाए। इस बात के प्रति जागरूक होना है, चित्त की निर्मलता को पाना है। निर्मल चित्त में बुरे विचार प्रस्फुटित ही नहीं होते।

अनावश्यक विचार न आएं

दूसरी बात है—अनावश्यक विचार न आएं। विचार का हमें विकास करना है, चिंतन को बहुत आगे बढ़ाना है, चिंतनशील और विचारशील बनना है। यदि ध्यान करने वाला व्यक्ति चिंतनशील न रहे तो फिर ध्यान के कोई पास ही नहीं फटकेगा। ध्यान किया और विचार समाप्त हो गया, चिंतन समाप्त हो गया, इसलिए अब दुनिया के किसी काम का नहीं रहा। यदि ऐसा होता है तो कोई ध्यान करने क्यों आएगा ? हमें चिंतनशून्य नहीं होना है, विचार से खाली नहीं होना है, किन्तु अनावश्यक विचार से मुक्त होना है। दिन भर जो बिना सिर-पैर के अनावश्यक विचार आते रहते हैं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उन विचारों को रोकना है। वे ही विचार आएं, जो आवश्यक हैं और हमारे विकास में सहयोगी बन सकें। अनावश्यक विचार मानसिक तनाव पैदा करते हैं, मस्तिष्क को बोझिल बनाते हैं, नींद में बाधा डालते हैं और नींद की गोलियां खाने को विवश करते हैं। बहुत सारे लोग ऐसे हैं, जिनके सो जाने पर भी विचारों का चक्का रुकता नहीं, चलता रहता है। या तो विचार चलेगा या नींद आएगी। दोनों एक साथ नहीं चल सकते। दोनों का छत्तीसी संबंध है।

पदार्थ और विचार

ध्यान का प्रयोजन विचार के विकास को रोकना नहीं है, किन्तु विचार का और अधिक विकास करना है। अनावश्यक विचार आएंगे तो विचार की शक्ति कमजोर पड़ जाएगी, सोचने और चिंतन करने की क्षमता कम हो जाएगी। आवश्यक विचार करेंगे तो हमारी यह क्षमता और अधिक बढ़ जाएगी। विचार के क्षेत्र में अनेक समस्याएं हैं। एक समस्या है पदार्थ। पदार्थ और विचार का बहुत गहरा संबंध है। हमारे विचारों का विकास पदार्थ के साथ हुआ है। पदार्थ सामने आते हैं, विचार पैदा होते हैं। पदार्थ की स्मृति आती है तो विचार का सिलसिला शुरू हो जाता है। पदार्थ के साथ व्यक्ति के स्वार्थ भी जुड़े हुए हैं, भावनाएं भी जुड़ी हुई हैं और वे भावनाएं अलग-अलग ढंग से व्यक्ति को सोचने के लिए विवश करती हैं।

समस्या पिता की

एक आदमी ने अपने दो बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाई। एक दिन वह चिंता की अवस्था में बैठा था। एक मित्र ने पूछा—'तुम आज इतने चिंतित क्यों हो ?' वह बोला—'मुझे एक उलझन हो गयी है।' मित्र ने पूछा—'उलझन किस बात की ? क्या नौकरी से संबंधित कोई विवाद खड़ा हो गया ? दोनों लड़कों ने कोई समस्या खड़ी कर दी ? या स्वास्थ्य संबंधी कोई परेशानी है ?' उसने कहा—'ऐसा कुछ भी नहीं है। दो लड़कों में से एक को डॉक्टर बना दिया। दूसरे को वकील। दोनों का अच्छा काम चल रहा है। मित्र ने पूछा फिर समस्या क्या है ? उसने कहा—समस्या यह है—कुछ दिन पहले एक मोटर दुर्घटना में मेरे पैर में थोड़ी-सी चोट आ गयी। डॉक्टर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लड़का कहता है कि इसका जल्दी उपचार करा लें, अन्यथा घाव बढ़ जायेगा। वकील लड़का कहता है—जल्दबाजी न करें। जख्म बढ़ने दें, उसके बाद मैं अदालत में दावा कर हर्जाने की मोटी रकम वसूलूंगा। मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि किसका कहा मानूं।'

स्रोत कहां है ?

इन दो तरह के विचारों का स्रोत कहां से आ रहा है ? निश्चय ही इनके मूल में स्वार्थ है। दोनों ही विचार स्वार्थ से जुड़े हैं। पदार्थ के साथ स्वार्थ और स्वार्थ के साथ विचार अनुबंधित हैं। हमारे विचार की इतनी प्रणालियां, पद्धतियां बन गयीं कि उन सबके पीछे पदार्थ ही जुड़ा है। दार्शनिक जगत् में इस पर बहुत चिंतन हुआ है। औद्योगिक और सामाजिक क्षेत्र में भी विचारों का बहुत विकास हुआ है। क्या केवल इनका विकास ही करते जाना है ? नहीं, हमें संयम भी करना होगा। केवल विचार का विकास मान्य नहीं है। एक सीमा तक ही विकास की बात मान्य है। उससे आगे विचार का संयम भी मान्य करना होगा। केवल विचार के विकास से समाज कहां चला जायेगा, कहा नहीं जा सकता।

सीमा के अतिक्रमण परिणाम

अध्यात्म के आचार्यों ने एक दूसरा रास्ता भी दिखाया—केवल विचार का विकास ही मत करो। एक सीमा के बाद विचार का संयम करना भी सीखो। यह बहुत आवश्यक है। समस्या यह है—विचार का संयम नहीं हुआ, ब्रेक लगाने की बात कहीं भी नहीं आयी। परिणामस्वरूप विचार इतना आगे बढ़ गया कि वह आज आदमी को भटका रहा है। ब्रह्मचर्य का उदाहरण लें। मनोविज्ञान की भाषा में सेक्स आदमी की एक मौलिक मनोवृत्ति है। यह प्रत्येक प्राणी में होती है। आदमी ने विचार की दृष्टि से इसका विकास किया और यहां तक विकास किया कि मुक्त यौनाचार की बात कही जा रही है। सेक्स पर बहुत पहले से ही चिंतन चला आ रहा है। समय-समय पर अलग-अलग धारणाएं आईं और आज चिंतन मुक्त यौनाचार तक पहुंच गया है। सीमा को लांघने के परिणाम भी सामने आने शुरू हो गये हैं। भयंकरतम बीमारी तक आदमी पहुंच गया है। आंखें खुल रही हैं और सोचा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जा रहा है कि इस पर कुछ अंकुश होना चाहिए, कोई नियंत्रण होना चाहिए।

नया मार्ग

आदिमकाल में जब आदमी डरा होगा तभी उसने शस्त्र बनाए होंगे। पत्थर युग में पत्थर के हथियार और लाठी, तीर, कमान आदि बनाए। गोली-बारूद से होते हुए आज वह आणविक पक्षेपास्त्रों तक पहुंचा है। जैसे-जैसे विचार का विकास हुआ, वैसे-वैसे पदार्थ का भी विकास होता गया। दोनों साथ-साथ चले हैं। इस समस्या को ध्यान में रखकर एक नया मार्ग खोजा गया। विचार मनुष्य की एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। चिंतन की क्षमता मनुष्य की एक बड़ी विशेषता है। किन्तु चिंतन को कितना आगे बढ़ाएं, इसकी भी एक सीमा होनी चाहिए, एक नियंत्रण और अंकुश होना चाहिए। जो विचार मानव जाति के लिए हितकर और कल्याणकारी हैं, वे ही विचार आगे बढ़ें और वे भी जैसे ही अनिष्टकारी या अहितकर होने लगें, वहीं उन पर ब्रेक लग जाए।

विचार की शक्ति

कल्याणकारी विचार भी निरंकुश रूप में आगे न बढें। उन पर भी नियंत्रण होना चाहिए। इसके बाद भूमिका बनती है निर्विचार अवस्था की। मनुष्य के विकास की पहली अवस्था है विचार। उसके बाद की अवस्था है निर्विचार। निर्विचार होने का मतलब विचारशून्य होना नहीं है। किन्तु एक सीमा पर विचार को बन्द कर अपनी अतीन्द्रिय चेतना को जगाना है। खोना नहीं है किन्तु शक्ति का और अधिक विकास करना है। विचार में बड़ी शक्ति है। पर उतनी नहीं है, जितनी कि हम मान रहे हैं। विचार की क्षमता बहुत छोटी है। विचार से अतीन्द्रिय चेतना की क्षमता कहीं ज्यादा बड़ी है। दार्शनिक भाषा में जिसे अवधिज्ञान कहा जाता है, अतीन्द्रिय चेतना या 'एक्स्ट्रा सेंसरी परसेप्शन' कहा जाता है, उससे केवलज्ञान की क्षमता और बड़ी है।

मन की क्षमता से परे

हम केवल मनस्वी नहीं हैं। मन ही हमारे लिए सब कुछ नहीं है। मन मनुष्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के विकास का एक लक्षण है। किन्तु उससे अधिक हमारी क्षमताएं हैं। बहुत बार आपने अनुभव किया होगा—घर में बैठे-बैठे अचानक मन में एक बात आई कि कोई आ रहा है। मेरे परिवार का कोई आदमी या मेरा कोई मित्र आ रहा है और सचमुच वह बात सही हो जाती है। इसका कारण क्या है? कारण हमारी आन्तरिक चेतना है, मन से परे की चेतना है। उसका ही यह काम है। मैंने एक बात सोची और तत्काल वही बात दूसरे ने भी सोची। इधर मैंने कोई बात कही और उधर वहीं बात दूसरे ने भी बोली। क्या यह मन का काम है ? नहीं, यह मन का काम नहीं है। यह विचार-संप्रेषण या टेलीपैथी मन से परे की बात है। पूर्वाभास होना, घटना के बाद का आभास होना, दूसरे के विचार को जान लेना, दूर की बात को जान लेना—ये सारी विचारातीत और मन की क्षमता के परे की बातें हैं।

अतीन्द्रिय चेतना कैसे जागे ?

क्या हम मन को अपनी क्षमता का चरमबिन्दु मानें ? क्या विचार को हम विकास का एक मात्र हेतु मान लें ? नहीं, ऐसा मानना हमारी बड़ी भूल होगी। हमारी क्षमता इनसे कहीं ज्यादा है। ध्यान के द्वारा हमें एक नया आयाम खोलना है, अपनी अतीन्द्रिय चेतना को जगाना है। प्रश्न है—वह कब जागेगी ? अतीन्द्रिय चेतना को जगाने की तीन शर्तें हैं—

१. बुरे विचार न आएं।

२. अनावश्यक विचार न आएं।

३. विचार बिल्कुल न आएं।

यह विकास का क्रम है। यह न समझें कि आज ध्यान करने बैठे हैं और आज ही विचार आना बन्द हो जायेगा। यह संभव नहीं है, क्योंकि हमने अनगिनत संबंध जोड़ रखे हैं। व्यक्ति घर में बैठा है और कारखाना मन में चल रहा है। दुकान में बैठा है और परिवार पीछे चल रहा है। ध्यान-शिविर में आप अकेले आए हैं, पत्नी पीछे है, आपका मन उसकी चिन्ता में उलझा हुआ है। संबंध जोड़ रखा है हजारों चीजों के साथ और विचार किसी का न आए, यह कैसे संभव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंध और विचार

संबंध और विचार—दोनों परस्पर जुड़े हुए हैं। जहां संबंध है, वहां विचार का आना अनिवार्य है। यदि ध्यान के लिए आते समय सारे संबंधों से मुक्त होकर आते तो संभव भी हो सकता था, किन्तु बंध कर आते हैं, इसलिए इतना जल्दी छूट पाना संभव नहीं है।

इस सूत्र पर ध्यान दें—जितने ज्यादा संबंध, उतने ज्यादा विचार। जितनी ज्यादा संबंधमुक्तता का भाव, उतना ज्यादा निर्विचार। आप विचारों को रोकने का प्रयत्न न करें, पहले संबंधों को कम करने का प्रयत्न करें। आपने अनुबंध कर लिया—तीन बजे मिलना है तो ढाई बजे ही आपका मानसिक भाव बदल जायेगा और आप घड़ी देखना शुरू कर देंगे। किसी और काम में फिर मन नहीं लगेगा। अगर आधा घंटा की देरी हो जाए तो आपकी झुंझलाहट बढ़ जायेगी। आप इस भ्रम में न रहें—एक ही दिन में मन के सारे संकल्प-विकल्प समाप्त हो जाएंगे। ऐसा कभी न सोचें। एक-दो या पांच-सात दिनों के ध्यान से भी ऐसा संभव नहीं होगा। बिल्कुल यथार्थवादी होकर चलें, सचाई को समझ कर चलें। हमने अपने अनुबंधों का जितना विस्तार किया है, संबंधों को जितना विस्तृत किया है, उनके प्रति जब तक हमारी मूर्च्छा कम नहीं होगी, वे संबंध कम नहीं होंगे, तब तक विचारों के प्रवाह को कभी रोका नहीं जा सकेगा।

विचार की चिन्ता छोड़ें

ध्यान करने वाले के लिए यह अपेक्षित है कि वह विचारों की चिंता छोड़े, पहले मूर्च्छा को कम करने की बात सोचे। यदि विचार आते हैं तो वे आपका क्या बिगाड़ते हैं ? आप उनके साथ जुड़ते हैं, तभी आपका कुछ बनता-बिगड़ता है, अन्यथा आपको उनसे कुछ भी लाभ-हानि नहीं होगी। आप अनुबंधों में फंसते हैं, विचारों में उलझते हैं, उनकी चिंता करते हैं, उनसे प्रभावित होते हैं, तो फिर आपका नुकसान होना ही है, परेशानी बढ़नी ही है। हमें विचारों के साथ जुड़ना नहीं है, विचारों के साथ बहना नहीं है। विचार आया और गया। जुड़ें नहीं, मात्र देखें। यदि ऐसा हुआ तो फिर विचार कोई कठिनाई पैदा नहीं कर सकेगा। आप तटस्थ बन जाएं, मध्यस्थ बन जाएं, द्रष्टा और ज्ञाता बन जाएं, विचारों को जानते-देखते रहें,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनकी प्रेक्षा करते रहें, वे आपकी परेशानी और उद्विग्नता का कारण कभी नहीं बनेंगे। जिन लोगों को ध्यानकाल में बहुत विचार आते हैं, उन्हें विचारप्रेक्षा का प्रयोग करना चाहिए। दिल्ली के चांदनी चौक के रास्ते से दिन-रात कितनी गाड़ियां, वाहन दौड़ते रहते हैं। सड़क के किनारे की दुकान का दुकानकार अगर उन्हीं पर ध्यान देता रहे तो पागल हो जाए। वह ध्यान देता है अपने धंधे पर। बाकी सब चीजों को वह देखकर भी अनदेखा कर देता है। ध्यान के साधक को भी यही करना है। यदि यह जागरूकता बनी रहे, दृष्टिकोण सही हो जाए तो सब ठीक हो जाए।

एक महिला ने मकान की ऊपरी मंजिल से एक पका आम गिराया। नीचे खड़े भिखारी ने उस आम को उठा लिया और खाने लगा। महिला ने ऊपर से आवाज देकर पूछा—'क्यों, अच्छा है न ?' भिखारी बोला—'बस, ठीक-ठाक है।' महिला ने पूछा—'ठीक-ठाक है, इसका क्या मतलब ?' भिखारी बोला—'मतलब यही है कि इससे अच्छा होता तो आप उसे न गिरातीं और अगर इससे ज्यादा सड़ा होता तो मैं न खाता। इसलिए बस, ठीक-ठाक है।'

शक्ति है देखने में

हम प्रत्येक बात को सम्यक्दृष्टि से लें। ध्यान की अवस्था में बहुत बुरे विचार आते हैं तो ध्यान ही नहीं हो पाता और यदि कोई विचार न आता तो हम समाधि की अवस्था में चले जाते, ध्यान की जरूरत ही न रह जाती। इसलिए हमारी यह ध्यान की क्रिया बस ठीक-ठाक है। मध्य का मार्ग है यह। न हम अति कल्पना करें और न निराश हों, केवल अपनी जागरूकता पर ध्यान दें, उसे निरंतर बढ़ाएं। देखने में बड़ी शक्ति है। हम देखने का अभ्यास बढ़ाएं। देखने का तात्पर्य हमारी जागरूकता से है। जैसे-जैसे प्रेक्षा की शक्ति बढ़ेगी, विचार आने भी कम हो जाएंगे। जहां आदर नहीं होगा, वहां कोई क्यों आयेगा ? अगर आप विचार का स्वागत करेंगे, उनसे अपनापा जोड़ेंगे तो वे आपका स्थायी मेहमान बनने की कोशिश करेंगे। उपेक्षा करेंगे तो वे स्वतः चले जाएंगे। जैसे-जैसे यह जागरूकता बढ़ेगी, विचार की समस्या समाहित होती चली जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार को बदलना सीखें

एक बगीचा। बगीचे में बहुत सारे फूल। खुशबू आ रही है और दूर बैठा आदमी हवा के गुणगान कर रहा है—कितनी बढ़िया हवा है, कितनी सुगंधभरी हवा है। कुछ दूरी पर एक दूसरा आदमी बैठा है। उधर कूड़े का ढेर है। वह आदमी तिलमिला रहा है। कह रहा है—कितनी दुर्गन्ध है। बदबू आ रही है, जी मिचला रहा है।

सूचक है विचार

हवा के साथ सुगंध भी आ रही है, हवा के साथ दुर्गन्ध भी आ रही है। वस्तुतः न हवा के साथ सुगंध है और न हवा के साथ दुर्गंध है। एक आदमी बैठा है। मन में बहुत अच्छे-अच्छे विचार आ रहे हैं। वह मन ही मन प्रसन्न हो रहा है कि आज कैसा अच्छा दिन उगा, जो इतने अच्छे विचार आ रहे हैं। शाम के समय वही आदमी बैठा है। अनिष्ट विचार, बुरे विचार आने शुरू हो गये। मन में बड़ा दुःखी हो रहा है। कह रहा है—आज न जाने किसका मुंह देख लिया, न जाने क्या हो गया, जो इतने खराब विचार आ रहे हैं। विचार न अच्छा है, न बुरा। विचार तो पवन है, हवा है। हवा का काम होता है पहुंचा देना। विचार का काम है पहुंचा देना। विचार सूचक है। हमें सूचना देता है वह। भीतर में अगर अच्छाई चल रही है तो वह अच्छाई की सूचना दे रहा है। भीतर में अगर बुराई चल रही है तो वह बुराई की सूचना दे रहा है।

आन्तरिक व्यक्तित्व का सूचक

हमारे आन्तरिक व्यक्तित्व का सूचक है विचार। वह मात्र पवन का काम करता है। अगर फूल मिला तो सुगंध ले आयेगा। अगर कूड़ा-कचरा मिला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो दुर्गन्ध लायेगा। ठीक वैसे ही अगर अच्छा भाव मिला तो विचार अच्छा ले आयेगा। भीतर में बुरा भाव मिला तो बुराई ले आयेगा। यह तो मात्र वाहक है, दूत है, जो समाचार को पहुंचा देता है। यदि आन्तरिक व्यक्तित्व को जानना है तो उसका बहुत अच्छा माध्यम है विचार। जैसा विचार आए, समझना चाहिए कि हमारा आन्तरिक व्यक्तित्व भी वैसा है। हम आन्तरिक व्यक्तित्व को देख नहीं सकते। हमारे पास उसे देखने का कोई साधन नहीं है। किन्तु विचार एक अच्छा माध्यम है। उसके द्वारा हम अपने आन्तरिक व्यक्तित्व को जान सकते हैं, पहचान सकते हैं, परख सकते हैं।

बाहरी प्रभाव का सूचक

विचार सूचक है बाहरी प्रभावों का। बाहर से भी प्रभाव पड़ते हैं मनुष्य पर। विचार उनका सूचक बनता है। ग्रहों का प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। सौरमण्डल के ग्रहों का विकिरण और प्रभाव मनुष्य पर पड़ता है। बिना प्रयोजन मनुष्य निराशा से भर जाता है। बिना मतलब आदमी उत्तेजित हो जाता है। हीन भावना और अहंकार की भावना भी आ जाती है। बाहर का प्रभाव भी होता है। ग्रहों का प्रभाव, वातावरण का प्रभाव, व्यक्तियों का प्रभाव और वस्तुओं का प्रभाव। बेचारे मन को दोनों और का भार ढोना पड़ता है—इधर भीतर का बोझ, उधर बाहर का बोझ। यह ऐसा बीच में पड़ गया है कि इसका काम ही भार ढोना हो गया। बस, जो भी आता है, इस पर बोझ लाद देता है।

अवध्य होता है दूत

यदि हम विचार को ही पकड़ेंगे तो समस्या का समाधान नहीं हो सकेगा। अध्यात्म के आचार्यों ने इस सचाई को बहुत पहले समझ लिया था। इसलिए उन्होंने कहा—'विचार पर ज्यादा बोझ मत लादो, अतिरिक्त बोझ मत लादो। ज्यादा भार लाद दिया तो वह दब जायेगा, टूट जायेगा, कुछ मिलेगा नहीं। प्याज के छिलके उतारते चले जाओ, कुछ बचेगा नहीं। जो सूचना देने वाला है, उस पर न तो क्रोध करो और न ज्यादा प्रसन्न बनो। बस, यही समझो कि वह बेचारा मात्र संचार का काम करने वाला है, दूत का काम करने वाला है। संस्कृत साहित्य में बहुत स्पष्ट कहा गया है—दूत अवध्य होता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है। प्राचीनकाल में एक राजा का संदेश दूसरे राजा तक पहुंचाने का काम दूत ही करते थे। तब इसका और कोई दूसरा साधन नहीं था। दूत ही उनके संदेशों का आदान-प्रदान करते थे। दूत कोई कड़ी बात कहता तो भी उसे दंडित नहीं किया जाता था। वह सर्वथा क्षम्य होता था। इतिहास की अनेक घटनाएं इस तथ्य की साक्षी हैं—दूत ने जाकर राजा को ऐसी खरी-खोटी सुनाई कि राजा तिलमिला कर रह गया। उसने म्यान से तलवार खींच ली, किन्तु दूत को अवध्य मान कर वह कुछ नहीं कर सका। यह एक राजनीतिक सीमा थी, व्यवस्था थी। अपमान और तिरस्कार सहकर भी इस सीमा का अतिक्रमण नहीं किया जाता था।

निदर्शन बाहुबली का

चक्रवर्ती भरत ने दूत को बाहुबली के पास भेजा। दूत ने बाहुबली को भरत का संदेश दिया। दूत ने कड़ी भाषा में संदेश को नमक-मिर्च लगाकर चटपटा बना दिया। बाहुबली को बहुत क्रोध आया। वे स्वाभिमानी थे। किसी की बात को सहन करने वाले नहीं थे। साथ ही साथ पराक्रमी भी थे। उन्हें अपने बाहुबल पर पूरा भरोसा था। उनका नाम ही था बाहुबली। वे ऐसी चट्टान थे, जिसे कोई झुकाने वाला न था। बहुत क्रोध आया उन्हें दूत की बात पर। दूत ने भरत की महिमा का बखान करते हुए बाहुबली को उनकी सेवा करने, उनकी अधीनता स्वीकार करने का उपदेश दिया था और ऐसा न किये जाने पर दंडित किये जाने की धमकी भी दी थी। बाहुबली दूत की बात सुनकर तिलमिला उठे। किन्तु फिर संयत होकर बोले—'दूत ! तू बड़ा वाचाल है। लगता है वाणी पर तुम्हारा संयम नहीं है। तुम्हारी यह धृष्टता सहन नहीं की जा सकती। किन्तु तू दूत है इसलिए मौन धारण कर और शीघ्रता से यहां से चला जा।

विचार भी दूत है

अंगद और हनुमान को भी दूत मानकर महाबली रावण ने क्षमा कर दिया था। दूत अवध्य होता है, उसे मारा नहीं जाता। विचार भी दूत है। यह भीतर का संदेश बाहर तक पहुंचा देता है ! इतना-सा ही काम है इसका। हम यदि विचार पर ही क्रुद्ध और राजी होकर अटक गये तो बड़ी भ्रान्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी। न विचार के जगत् में अटकना है और न विचार के जगत् में भटकना है। इतना मात्र जान लेना है कि मुझे एक सूचना मिली है, अब मुझे सावधान हो जाना है। यदि अच्छी सूचना मिले, अच्छे विचार आएं तो और आगे बढ़ने का संकल्प, यदि बुरे विचार आएं, बुरी सूचना मिले तो उसके परिष्कार का संकल्प।

कैसे बदल सकते हैं विचार ?

प्रश्न है—यह संकल्प कैसे संभव बने ? इसके लिए एक सूत्र पर ध्यान देना है और वह यह है—'विचार को बदलना सीखें।' ध्यान इसमें हमारी सहायता करता है। ध्यान का एक मुख्य प्रयोजन है विचार को बदलना। हम विचार को बदलना सीखें। विचार को कैसे बदल सकते हैं ? क्योंकि हम पहले ही कह चुके हैं कि विचार भीतर से आ रहा है। हवा की गंध को कैसे बदला जा सकता है ? हवा में सुगंध या दुर्गंध है तो उसे कैसे बदला जा सकता है ? परिणाम को कभी बदला नहीं जा सकता। इस स्थिति में हम विचार को कैसे बदलें ?

विचार को बदलना है, इसका तात्पर्य है—भाव का परिवर्तन करना है, भाव को बदलना है। मूल है भाव। भाव में सुगंध भी है, दुर्गंध भी है। यदि भाव सुगंधित हैं तो उनका आगे विकास करना है। यदि उनमें कोई दुर्गंध है तो उसका परिष्कार करना है।

सत्य की खोज

ध्यान के आचार्यों ने इसके लिए जो मार्ग सुझाया है, वह है सत्य की खोज। सत्य की खोज के द्वारा ही यह काम किया जा सकता है। सत्य की खोज के बिना भावों को बदला नहीं जा सकता और भावों को बदले बिना विचारों को बदला नहीं जा सकता। इसलिए सत्य की खोज बहुत जरूरी है। हम स्थूल बात पर न अटक जाएं। गहरे में जाएं, गहरे में उतरें। गहरे में आदमी उतरता है तो उसे ऐसा सत्य उपलब्ध होता है कि उसका पूरा जीवन बदल जाता है। स्थूल जगत् में जीने वाला व्यक्ति अपने जीवन को कभी नहीं बदल पाता। जो सूक्ष्म में जाता है, उसका चिंतन, धारणाएं, मान्यताएं, जीवन—सब कुछ बदल जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबसे मूल्यवान् क्या है ?

कहानी प्राचीन है, किन्तु है बड़ी मार्मिक। ढाई हजार वर्ष पहले की बात है। सम्राट् श्रेणिक एक दिन अपनी राजसभा में बैठा था। महामात्य अभयकुमार भी पास में बैठा था। सभी दरबारी और सामन्त उपस्थित थे। चर्चा चल रही थी। चर्चा का विषय था—'सबसे मूल्यवान् चीज क्या है?' किसी ने कहा—'हीरा बहुत मूल्यवान् है। किसी ने कहा—पन्ना बहुत मूल्यवान् है। किसी ने सोने को मूल्यवान् बताया। जिसकी जैसी धारणा थी, उसने वैसा मंतव्य प्रकट किया। सबके अलग-अलग मत थे। सबसे अन्त में महामात्य अभयकुमार की बारी आई। सम्राट् उसका विचार जानने के लिए उसकी ओर उन्मुख हुए। अभयकुमार दो मिनट मौन रहा, फिर गंभीरता से बोला—'सबसे अधिक मूल्यवान् है—मांस।' अभयकुमार के उत्तर को सुन सभी सभासद मन ही मन हंस पड़े। उन्होंने सोचा—'बच्चों जैसा उत्तर है। टके सेर बिकने वाली चीज को महामात्य सबसे कीमती बता रहे हैं। बात सम्राट् के गले भी नहीं उतरी। सूक्ष्ममेधा वाला व्यक्ति सत्य की तह तक पहुंच कर बात करता है। उसकी बात साधारण आदमी की समझ से परे होती है। महामात्य की बात किसी की समझ में नहीं आई। सम्राट् बोला—'अभयकुमार ! तुम्हारी बात समझ में नहीं आई, किन्तु हास्यास्पद-सी लगी। तुम अपनी बात को प्रमाणित करो, अथवा अपनी बात को वापस लो।' अभयकुमार बोला—'राजन् ! मैंने बहुत सोच-समझकर कहा है। मैं अपनी बात को प्रमाणित करूंगा।

सम्राट् ने उसे एक सप्ताह का समय दिया। सभा विसर्जित हो गयी।

प्रस्ताव अभयकुमार का

तीन दिन बीत गये। चौथे दिन अभयकुमार ने प्रजा में घोषणा करवा दी—सम्राट् रुग्ण हो गये हैं। उसने अपने विश्वस्त कर्मकरों को राज्य के प्रमुख व्यक्तियों के पास भेजा। उनके साथ यह संदेश प्रेषित किया—'महाराज की चिकित्सा करने वाले वैद्यों ने कहा है कि उन्हें दी जाने वाली दवा मनुष्य के हृदय के मांस के साथ दी जायेगी, तभी वह कारगर होगी अन्यथा सम्राट् को स्वस्थ नहीं किया जा सकता। इसलिए आप अपने हृदय का एक तोला मांस दें। उसके मूल्यस्वरूप एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं दी जाएंगी।' राजसभा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के सभी सदस्यों ने प्रस्ताव को सुनते ही ठुकरा दिया। हृदय का मांस देना मृत्यु को अंगीकार करना था। उसके लिए वे एक लाख मुद्राएं ही नहीं, करोड़ मुद्राएं भी लेने को तैयार नहीं हुए। कर्मचारी खाली हाथ वापस आ गये।

लज्जा से सिर झुक गए

आठवें दिन राजसभा जुड़ी। सम्राट् उपस्थित हुए। सब सभासदों ने एक स्वर से महाराज की कुशल-क्षेम पूछी, स्वास्थ्य को लेकर अपनी चिन्ता जताई। सम्राट् कुछ कहते, उससे पूर्व ही अभयकुमार ने खड़े होकर कहा—'हम लोगों का यह सौभाग्य है कि सम्राट् बहुत शीघ्र स्वस्थ हो गये। बिना दवा के ही स्वस्थ हो गये। वैद्यों ने तो दवा ऐसी चीज के साथ लेने का परामर्श दिया था, जो बहुत कठिन थी। जिस चीज के साथ दवा ली जानी थी, वह बहुत दुर्लभ है, कहीं मिल नहीं सकती।

सम्राट् ने उस वस्तु को जानने की उत्सुकता प्रकट की। अभयकुमार ने कहा—'महाराज ! वैद्यजी ने दवा के लिए अनुपात के रूप में मनुष्य के हृदय के एक तोले मांस का परामर्श दिया था। किन्तु बहुत प्रयत्न करने पर भी हम एक तोला मांस प्राप्त नहीं कर सके। इसके लिए एक लाख स्वर्ण-मुद्राएं भी लोगों ने ठुकरा दीं।'

महाराज श्रेणिक ने कहा—'अच्छा, इतने मूल्य में भी नहीं मिला ?

अभयकुमार ने कहा—'महाराज ! मिलता कैसे ? मैंने तो पहले ही कहा था—सबसे अधिक मूल्यवान् है मांस।'

अभयकुमार ने उसी समय एक और सचाई का बोध कराते हुए कहा—'महाराज ! यह कितनी विचित्र बात है कि हमारे राज्य के सभी उच्चाधिकारी मांसाहारी हैं, मांस खाते हैं, किन्तु अपने शरीर से एक भी तोला मांस अलग करने की हिम्मत नहीं कर पाये। निरीह पशुओं के पूरे शरीर का मांस काट कर खा जाने वाले ये लोग सोच भी नहीं सकते कि शरीर के एक तोले मांस के कटने में भी कितना कष्ट होता है, वहां उपस्थित सभी मंत्रियों, अधिकारियों के सिर लज्जा से झुक गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्य की खोज का उपक्रम

जब मनुष्य सत्य की खोज में प्रस्थान करता है, सत्य की अतल गहराई में जाता है, तब जो रहस्य उद्घाटित होता है, उससे भाव बदल जाते हैं। भाव परिवर्तन का एक बहुत बड़ा सूत्र है—सत्य की खोज। हम केवल विचारों में न उलझें। विचार मूल नहीं है। मूल है भाव। हम सत्य तक जाएं, गहराई में जाएं, वहां जाने पर भावों में परिवर्तन आना शुरू हो जायेगा। जो लोग ऊपर-ऊपर की बात करते हैं, उनके विचार पवित्र होने बहुत कठिन हो जाते हैं, क्योंकि भावों को परिष्कृत होने का अवसर ही नहीं मिलता।

ध्यान सत्य की खोज का उपक्रम है। जो व्यक्ति ध्यान में बैठता है, उसके सामने सचाई प्रकट होने लगती है। जैसे-जैसे ध्यान की गहराई में व्यक्ति जायेगा, उसके सामने सत्य प्रकट होने लगेगा। जैसे-जैसे सत्य प्रकट होगा, वैसे-वैसे भाव बदलने शुरू होंगे। जो आदमी बहुत गहराई में जाता है, उसके जीवन की शैली बदल जाती है। ध्यान करने वाले का केवल विचार ही नहीं, जीवन की पूरी शैली बदल जाती है। आहार में परिवर्तन, रहन-सहन में परिवर्तन, व्यवहार में परिवर्तन—सब बातें बदली-बदली-सी लगती हैं। अगर यह परिवर्तन न आए तो फिर ध्यान करने का औचित्य ही क्या रहा ?

जर्मनी के एक मजिस्ट्रेट प्रेक्षाध्यान शिविर में आए। जब वे यहां से जाने लगे, लोगों ने पूछा—'आपका अनुभव कैसा रहा?' उन्होंने कहा—'अभी मैं क्या बताऊं ? घर जा रहा हूं। वहां अपने परिवार के साथ रहूंगा। मेरे पारिवारिकजन, मित्र और पड़ोसी कहेंगे कि तुम बदल गये हो तो मैं समझूंगा कि मुझमें परिवर्तन आया है। वहां से मैं आपके प्रश्न का उत्तर लिखूंगा कि कितना परिवर्तन आया है।'

तीन प्रकार की जीवनशैली

ध्यान एक अन्तःप्रेक्षण है। अपने आपको समझने का एक माध्यम है—निरीक्षण। दूसरा माध्यम है—अन्तःप्रेक्षण। अन्तःप्रेक्षण का अर्थ है—सत्य को भीतर से देखना। जिस व्यक्ति ने सत्य को भीतर से देखना शुरू किया, उसकी जीवनशैली निश्चय ही बदल जायेगी। हमारे सामने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तीन प्रकार की जीवनशैलियां हैं—

१. पदार्थापेक्ष जीवनशैली।

२. आत्मापेक्ष जीवनशैली।

३. उभयापेक्ष जीवनशैली।

पहली जीवनशैली वह है, जो पदार्थ को सब कुछ मानकर चलती है। उसका मत है—दुनिया में जो कुछ भी सारभूत है, वह पदार्थ है। खाओ, पीओ, मौज करो, संग्रह करो—बस, यही इस जीवनशैली का मूलमंत्र है। केवल पदार्थ की परिक्रमा। आगे पदार्थ, पीछे पदार्थ, दायें पदार्थ, बायें पदार्थ। चारों ओर पदार्थ से घिरा हुआ जीवन।

दूसरी जीवनशैली चैतन्यापेक्ष या आत्मापेक्ष है। जो व्यक्ति केवल अपने चैतन्य पर ध्यान केन्द्रित कर सचाई को पाना चाहता है, उसी में इतना लीन हो जाता है कि बाहर की किसी चीज पर उसका ध्यान ही नहीं जाता, वह आत्मापेक्षी होता है। जैन साधना के क्षेत्र में इस तरह की साधना करने वाले लोगों को प्रतिमाधारी, एकलविहारी या आत्मसाधक कहा गया है।

जीवन की तीसरी शैली है—उभयापेक्ष। जो पदार्थ की भी चिंता करता है और अपनी आत्मा की भी चिंता करता है, वह उभयापेक्षी होता है।

जरूरी है तीसरी श्रेणी का विकास

ध्यान करने वाले व्यक्ति में कम से कम इस तीसरी श्रेणी का विकास होना जरूरी है। दूसरी श्रेणी प्रत्येक आदमी के लिए सरल नहीं है। वहां तक तो कोई विरल व्यक्ति ही पहुंच सकता है। सभी वहां तक नहीं पहुंच सकते। सामान्यजन की बात छोड़ दें, एक मुनि भी वहां तक सहसा नहीं पहुंच सकता। अकेले में रहकर केवल अपनी आत्मा की ही चिंता करना बहुत बड़ी साधना है। इतना निरपेक्ष बन पाना सबके लिए संभव नहीं है। व्यवहार की भाषा में उसे अव्यावहारिक भी कह सकते हैं। वह दूसरों के किसी काम का नहीं होता है इसलिए उसे हम छोड़ दें। शेष दो प्रणालियों में आज का आदमी जी रहा है। ध्यान से पदार्थापेक्ष जीवनशैली बदलेगी। पदार्थ के साथ-साथ अपनी चिंता होनी भी शुरू हो जायेगी। आत्मा की चिंता या चैतन्य के परिष्कार की चिंता होनी भी शुरू हो जायेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वह सोचने लग जायेगा कि सत्य क्या है ? क्या पदार्थ सत्य है ? जब तक हम गहराई से नहीं सोचते हैं, तब तक पदार्थ हमारे लिए सब कुछ है। जब सोचने लग जाते हैं तब पदार्थ का मिथ्यापन हमारे सामने स्पष्ट होने लगता है।

तब होता है मूल्य

शंकराचार्य ने कहा था—'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या—'ब्रह्म सत्य है, जगत् मिथ्या है। इस सूत्र की दार्शनिक व्याख्या जटिल बना दी गयी। मूलतः यह अध्यात्म का सूत्र था। सत्य है चैतन्य। पदार्थ मिथ्या है। मिथ्या इस अर्थ में कि आज तो है, कल नहीं है। अभी है, शाम को नहीं है। जो पदार्थ आज तृप्ति दे रहा है, थोड़े दिन बाद अतृप्ति देने लग जायेगा। मैं आज सवेरे हाल में खड़ा था। पीछे हौज में गिरते हुए पानी को देखा। ध्यान से कोई बात देखता हूं तो उसमें मुझे कोई नयी बात मिल जाती है। गिरते पानी को देखकर मैंने सोचा—इस पानी का मूल्य क्या है ? संभवतः कुछ भी नहीं, यों ही गिर रहा है। दूसरे ही क्षण सोचा—अभी-अभी मैंने पानी पिया है, इसीलिए लगता है कि पानी का कोई मूल्य नहीं है। अगर पांच दिन की चौविहार तपस्या में इस पानी को देखता तो इसका मूल्य समझ में आ जाता।

पदार्थ से जुड़ी है अतृप्ति

वस्तु का कोई मूल्य नहीं है। अतृप्ति का क्षण आता है तो मूल्य सामने आने लग जाता है। किन्तु पदार्थ की यह विशेषता है कि वह तृप्त कभी होने ही नहीं देता। उससे तृप्ति कभी होती ही नहीं। एक बार तृप्ति का आभास होता है। हमने पानी पी लिया तो घंटा भर उसकी उपेक्षा कर सकते हैं। वह जरूरी नहीं लग सकता है किन्तु घंटा भर बाद अतृप्ति पुनः पैदा हो जाती है। सहज प्रश्न होता है—लोग न जाने कितने समय से इतने भोगों का सेवन कर रहे हैं। क्या सभी तृप्त हो गये ? अगर भोजन करने से तृप्त हो गये तो फिर क्यों बार-बार यही क्रम दुहराना पड़ता है ? सचाई यही है कि लंबे समय से भोगों का सेवन करते हुए भी कोई तृप्त नहीं हुआ है। यथार्थ यह है—भोग से अतृप्ति और बढ़ जाती है। भूख नहीं है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु एक निश्चित समय पर अतृप्ति आपको थाली के सामने बैठा ही देती है। बहुत सारे लोग अतृप्ति के कारण ही खाते हैं, आवश्यकता के कारण नहीं। पदार्थ का धर्म है क्षण भर के लिए तृप्त करना, फिर अतृप्त बना देना, अतृप्ति के संसार का निर्माण कर देना, ऐसा अंधकार निर्मित कर देना, जिसमें सचाई का पता न चले।

सूरज की धृष्टता

राजा की सबसे प्रिय रानी जेठ की तपती दोपहरी में किसी कारण से खुले आंगन में निकली। तपती दोपहरी की तेज धूप ने उसके बदन को झुलसा दिया। वह तिलमिला कर राजा के पास पहुंची और बोली—'लोग कहते हैं कि आप सबसे बली और समर्थ राजा हैं, किन्तु मैं आपको सबसे कमजोर समझती हूं। आपके शासन में सबको मनमानी करने की पूरी छूट है।' राजा ने रानी के रोष का कारण पूछा। रानी ने कहा—'इस सूरज ने मेरे साथ धृष्टता की है। इसे जब तक अपने राज्य से आप बाहर नहीं कर देंगे, मैं आपसे नहीं बोलूंगी।'

रानी की बड़ी विचित्र मांग थी पर गुस्से में आदमी क्या नहीं करता ? राजा मोहान्ध था, किन्तु था समझदार। उसने अपने सेनापति को बुलाया और आदेश दिया—'तोपों के इतने गोले दागो कि सूरज दिखाई न दे।' राजा का आदेश क्रियान्वित हुआ। सूरज को लक्ष्य कर गोले दागने शुरू हो गए। धुएं के बादलों से आकाश आच्छादित हो गया, सूरज ढक गया। रानी को संतोष हुआ कि उसकी इच्छा का पालन किया गया है।

कहानी वर्तमान जीवनशैली की

आदमी मोह में इतना फंसता चला जाता है कि सचाई को झुठला देता है। पदार्थ की यह अतृप्ति सचाई को झुठला देती है। ऐसा संस्कार बन जाता है कि व्यक्ति मान लेता है—पदार्थ ही जीवन है, उससे परे कुछ भी नहीं है। उसका कोई विकल्प नहीं है। यह जीवनशैली बहुत भ्रान्ति पैदा करने वाली सिद्ध हुई है। सामान्य आदमी आज इसी शैली से जीवन जी रहा है। आज की बहुत सारी बीमारियां—कैंसर, हार्ट-अटैक, पेप्टिक अल्सर आदि-आदि इसी जीवनशैली को परिणाम हैं। मानसिक दृष्टि से विचार करें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तो कहा जा सकता है—हाइपर टेंशन, विक्षिप्तता, अनिद्रा आदि इसी जीवनशैली की देन हैं। इस जीवनशैली को बदलना है। केवल पदार्थ के पीछे चल रही इस अंधी दौड़ को छोड़ तीसरे प्रकार की जीवनशैली को अपनाना है। इस तीसरे प्रकार की जीवनशैली में पदार्थ को भी स्थान है और चैतन्य को भी स्थान है। पदार्थ के बिना जीवन की यात्रा नहीं चलती, समाज का विकास भी नहीं हो पाता। जीवन की जो सामान्य सुविधा है, वह भी नहीं मिलती। इसलिए हम पदार्थ की उपेक्षा नहीं कर सकते। प्रतिशत की भाषा में पचास प्रतिशत पदार्थ को स्थान दें तो पचास प्रतिशत चैतन्य को स्थान दें। चैतन्य का स्थान अधिक होना चाहिए, किन्तु उतना न हो सके तो कम से कम पचास प्रतिशत महत्त्व तो उसे मिलना ही चाहिए। इस तरह की जीवनशैली निर्मित जो जाए तो जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन घटित होगा। भाव-परिवर्तन का यह बहुत बड़ा आधार बनेगा। इस भूमिका पर हमारे भाव बदलेंगे तो विचार अपने आप बदलने लग जाएंगे। हमें विचार के लिए अलग से चिंता करने की जरूरत नहीं होगी।

विचारों में गहराई आए

सत्य की खोज का एक परिणाम है भाव-परिवर्तन। भाव-परिवर्तन का परिणाम है—विचार-परिवर्तन और विचार-परिवर्तन का अर्थ है जीवनशैली में परिवर्तन। यह एक पूरी शृंखला है। हम इस शृंखला के साथ चलें और वस्तुस्थिति का अंकन करें तो ध्यान की सार्थकता है। ध्यान आंख मूंद कर बैठने और समय व्यतीत करने का उपक्रम नहीं है। वह पूरा जीवन-दर्शन है। मैं तो यह मानता हूं—राजनीति का दर्शन भी ध्यान के बिना पूरा नहीं होता, समाज का दर्शन भी ध्यान के बिना पूरा नहीं होता। आर्थिक दर्शन भी ध्यान के बिना अधूरा है। हमारे जीवन की जितनी सारी प्रणालियां हैं, वे ध्यान के बिना पूरी नहीं होतीं। हम केवल वैचारिक स्तर पर सारी बात करते हैं। हमारी राजनीति भी केवल विचार के स्तर पर चलती है। समाज भी विचार के स्तर पर ही चलता है। मेरी दृष्टि में यह इतना उथला पानी है, जिसमें जहाज नहीं चल सकता। जहाज समुद्र में चल सकता है या नदी के गहरे पानी में चल सकता है, किन्तु थाली के पानी में कोई जहाज नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चल सकता। विचार भी केवल छिछले स्तर पर नहीं चल सकता। उस विचार में भावों की, सत्य की गहराई देनी होगी, तभी उसमें गंभीरता आयेगी। तभी हमारा चिंतन या विचार इतना गहरा बनेगा कि उस पर कुछ भी तैराया जा सकेगा, किसी भी समस्या का पार पाया जा सकेगा। ध्यान के मूल्यांकन का यह एक नया संदर्भ है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और शिक्षा

चार प्रकार के कलश होते हैं–

१. अमृत का कलश और जहर का ढक्कन।
२. जहर का कलश और अमृत का ढक्कन।
३. अमृत का कलश और अमृत का ढक्कन।
४. जहर का कलश और जहर का ढक्कन।

आदमी भी चार प्रकार के होते हैं–

१. भीतर में बहुत अच्छा, किन्तु व्यवहार अच्छा नहीं।
२. भीतर में बहुत बुरा, किन्तु व्यवहार ऐसे प्रदर्शित करता है, जैसे अमृतमय हो।
३. भीतर में भी अच्छा और व्यवहार में भी अच्छा।
४. भीतर में भी अच्छा नहीं और व्यवहार में भी अच्छा नहीं।

समग्र है तीसरा विकल्प

इन चारों में जिसे समग्र कहा जा सके, वह है तीसरा विकल्प–भीतर भी अमृत और बाहर भी अमृत। यह है समग्रता। जिसके भीतर में जहर और बाहर भी जहर है, ऐसा व्यक्ति किसी काम का नहीं है। भीतर अमृत है, किन्तु ढक्कन जहर का है, तो वह भी एकांगी है, हमारे काम का नहीं होता। समग्रता की दृष्टि से विचार करें तो भीतर और बाहर–दोनों ओर अमृत मिले तो वह हमारे लिए उपादेय हो सकता है। आज समाज में ऐसे व्यक्तियों के निर्माण की जरूरत है, जो तीसरे कलश की भांति अमृतमय हों और ढक्कन भी अमृत का हो।

व्यक्तित्व का निर्माण शिक्षा के द्वारा होता है, मस्तिष्कीय प्रशिक्षण के द्वारा होता है। हर व्यक्ति में क्षमताएं होती हैं, अच्छाइयां होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उपयुक्त शिक्षा और उपयुक्त वातावरण मिलता है तो भीतर में भी अमृत प्रकट हो जाता है और बाहर भी अमृत झरता है। उपयुक्त शिक्षा और वातावरण न मिले तो भीतर में भी जहर पैदा हो जाता है और बाहर भी जहर पैदा हो जाता है। समाज का सबसे अहम प्रश्न है शिक्षा। किस व्यक्ति को किस प्रकार की शिक्षा मिल रही है, किस प्रकार का प्रशिक्षण और वातावरण मिल रहा है, यह बहुत मूल्यवान् और महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। इस प्रश्न पर जितना ध्यान केन्द्रित होना चाहिए था, नहीं हो रहा है। यदि हो रहा है तो ठीक से उसका क्रियान्वयन नहीं हो पा रहा है।

दो समस्याएं

आज सबके सामने यह प्रश्न है—मनुष्य का सही ढंग है निर्माण नहीं हो रहा है। कुछ वर्ष पूर्व एक केन्द्रीय मंत्री ने कहा—'जब नयी शिक्षानीति का निर्धारण किया गया तो दो समस्याएं हमारे सामने थीं। आज भी वे समस्याएं विद्यमान हैं। पहली समस्या है—सांस्कृतिक व्यक्तित्व का विकास कैसे हो ? भारत की जो प्राचीन संस्कृति रही है, उसके प्रति हमारी जागरूकता कैसे बढ़े ? दूसरी समस्या है—आध्यात्मिकता का विकास कैसे हो ? ये भारत की दो बड़ी विशेषताएं हैं। इन दोनों के लिए अभी कोई रास्ता नहीं मिला है; इसलिए ये समस्याएं आज भी ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। हमने शिक्षा के क्षेत्र में व्यक्ति को विभक्त कर देखा है। व्यक्ति को तैयार कर देना, एक पुर्जा बना देना, एक साधन बना देना शिक्षा से संभव बन रहा है। साधन बनाने की शिक्षा तो हमारे पास है, किन्तु मूल्यवान् बनाने की शिक्षा हमारे पास नहीं है। साधन इस अर्थ में बना दिया कि मनुष्य धन का अर्जन कर सके। ऐसे उपाय खोज सके, जिनके द्वारा धन बढ़े, सुविधा बढ़े और किसी वैज्ञानिक, तकनीकी या किसी विशिष्ट क्षेत्र में उसकी क्षमताएं प्रकट हों। इतना सब किया जा रहा है, किन्तु वह अपने आप में आदमी बन सके, ऐसा शायद कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है।

वह कारखाना नहीं है

पूज्य गुरुदेव पटना पधारे। पटना विश्वविद्यालय में स्वागत का कार्यक्रम था। भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ॰ जाकिर हुसैन ने उस कार्यक्रम में एक बड़े मार्के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बात कही—'आचार्यजी ! हिन्दुस्तान आजाद हुआ। आजाद होने के बाद देश में कल-कारखानों का बहुत विकास हुआ, पर एक बात की कमी आज बहुत खटकती है। ऐसा कोई कारखाना नहीं लगाया गया, जिसमें आदमी आदमी बन सके। सभी तरह के कारखाने लगाए गये, किन्तु आदमी बनाने वाला एक भी कारखाना नहीं लगाया गया। अच्छे आदमी पैदा नहीं हो रहे हैं, बन नहीं रहे हैं।'

एक लड़के से किसी ने पूछा—'तुम्हारे गांव में कोई बड़ा आदमी पैदा हुआ है ?' वह बोला—'नहीं श्रीमान् जी ! हमारे गांव में तो सब बच्चे ही पैदा होते हैं। बड़ा आदमी एक भी पैदा नहीं हुआ।'

बच्चों का कारखाना है, बच्चे पैदा होते हैं, किन्तु अच्छा आदमी पैदा नहीं होता। अच्छा आदमी बनाने की समस्या का अनुभव आज सारा हिन्दुस्तान कर रहा है। हिन्दुस्तान ही नहीं, पूरा विश्व कर रहा है। कोरे बौद्धिक और वैज्ञानिक को ही आदमी नहीं माना जा सकता। उसे आदमी भी माना जाएगा तो पचास प्रतिशत ही माना जाएगा। जब तक चरित्र का विकास नहीं होता, आध्यात्मिकता का विकास नहीं होता, तब तक आदमी पूरा आदमी नहीं बनता है। आदमी की कमी आज पूरी नहीं हो रही है। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में ऐसा कुछ नहीं है, जिससे इस कमी को पूरा किया जाए। यह शिक्षण की समस्या आज सबके सामने है।

सार्थकता शिक्षा की

प्रश्न हो सकता है—आज इस समस्या की चर्चा का अर्थ क्या होगा ? क्योंकि शिक्षा का संचालन पूर्ण रूप से राज्य सरकारों के द्वारा हो रहा है। राज्य सरकार के प्रतिनिधि ही पाठ्यक्रम तैयार करते हैं, उनके ही आदमी पढ़ाते हैं, वे ही परीक्षाएं लेते हैं। किसी का उसमें हस्तक्षेप नहीं है तो उसकी चर्चा करने का क्या औचित्य है ? मेरे मन में भी यह प्रश्न पैदा होता है। फिर भी मैं जो कह रहा हूं, वह सोचे-समझे बिना नहीं कह रहा हूं। शिक्षा के बारे में हमारा जो चिंतन और क्रियान्वयन है, वह एक सुदीर्घ और सुचिंतित धारणा के आधार पर है। शिक्षा प्रणाली न आपके हाथ में है, न हमारे हाथ में है, फिर भी इसकी सार्थकता है, निरर्थकता नहीं। निरर्थक उपक्रम सिवाय कलह के और कुछ पैदा नहीं करता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घर में एक सुन्दर शीशा था, टूट गया। पति बोला—'तुम्हारे डंडे से ही टूटा है, इसलिए तुम्हारे खर्चे से ही अब दूसरा शीशा आएगा।' पत्नी बोली—'मैं इसमें क्या कर सकती थी ? मैंने तो डंडा तुम्हें मारने के लिए चलाया था, तुम अपने स्थान से हट क्यों गये ?'

परंपरा बदले

यह व्यर्थ का तर्क है, कलह को बढ़ाने वाला तर्क है। मैं जो तर्क प्रस्तुत कर रहा हूं, वह इस संदर्भ में बहुत सार्थक और सटीक है, समाज के लिए उपयोगी है। आप लोग अपने बच्चों को पढ़ाते हैं, लड़कों को भी और लड़कियों की भी। ग्रेजुएशन कराते हैं, पोस्ट ग्रेजुएशन और रिसर्च भी कराते हैं। कितने वर्ष लगते हैं ? इसमें पन्द्रह वर्ष, बीस वर्ष भी लग जाते हैं। जैसे ही पढ़ाई पूरी होती है, उसके साथ ही चिंता शुरू हो जाती है कि कब नौकरी लगती है। वस्तुतः नौकरी के प्रयास तो शिक्षा प्राप्त करते समय ही शुरू हो जाते हैं। शिक्षा में आज ऐसी ही परंपरा चल रही है। मैं इस परंपरा को बदलने की बात कर रहा हूं और वह यह है कि बच्चे को पढ़ाते समय दस-पन्द्रह और बीस वर्ष तक धैर्य रखा जा सकता है तो क्या एक वर्ष और नहीं लगाया जा सकता ? बी॰ ए॰, एम॰ ए॰ करने के बाद क्या एक वर्ष उसे और नहीं पढ़ाया जा सकता ?

बुद्धि की तीक्ष्णता का अर्थ

अब तक चली आ रही प्रणाली को बदलें। इसके साथ एक नयी बात जोड़ें। जीवन की यात्रा को चलाने के लिए, जीवन की आवश्यकता को पूरा करने के लिए जो पढ़ाया जाता है, उसके साथ अच्छा जीवन जीने की शिक्षा एक वर्ष तक अवश्य दें। अगर यह बात जुड़ जाए तो शिक्षा की जो अपूर्णता या अपर्याप्तता है, उसे पूरा किया जा सकता है। इससे समाज को शिक्षा के क्षेत्र में एक नया विकल्प प्राप्त होगा। इस पर बहुत गंभीरता से चिंतन करना है। बच्चे को धन कमाने के लिए आपने खूब पढ़ाया, किन्तु सुखी जीवन जीने के लिए आपने उसे कोई शिक्षा नहीं दिलाई। पढ़ तो वह खूब गया, बुद्धि बहुत पैनी हो गयी, तर्कशक्ति प्रबल हो गयी, समझ प्रखर हो गयी। अब छोटी कोई बात होगी तो भी उसे अखरेगी। क्योंकि भावनात्मक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगत् तो वैसा ही है। क्रोध वैसा ही, अहंकार वैसा ही, लोभ वैसा ही, भय भी वैसा ही, कामवासना भी वैसी ही। इधर बुद्धि को और तेज बना दिया इसका अर्थ क्या हुआ ? अनपढ़ आदमी किसी बात को आसानी से सह लेगा किन्तु पढ़ा-लिखा आदमी मन के प्रतिकूल कोई बात को सह नहीं पाएगा, तुरंत उसका अहंकार जाग जायेगा। 'मैं गंवार हूं' ? 'क्या मैं मूर्ख हूं ?'—ऐसे जुमले प्रतिक्रिया में सुनने को मिलेंगे। उसके लिए उसका अहंकार दुःखद बन जायेगा। वह मां, बाप और भाई को भी सहन नहीं कर सकेगा। उसका वह अहंकार स्वयं के लिए पीड़ादायी बन जायेगा। इस प्रकर की घटनाएं बहुत होती हैं। पढ़े-लिखे लोग आज ज्यादा दुःखी देखे जाते हैं। अनपढ़ आदमी का अहंकार उतना नहीं जागेगा, वह उतना ज्यादा संवेदनशील नहीं होगा, क्योंकि वह बात को आई-गई करना जानता है। पढ़े-लिखे के लिए ऐसा करना संभव नहीं होता। संवेदनशील उपकरण सूक्ष्म से सूक्ष्म बात को भी पकड़ लेता है। आज हम माइक्रोवेव सिस्टम को जानते हैं। आज का पढ़ा-लिखा वर्ग भी माइक्रो हो रहा है। जिसने माइक्रो बाइलोजी पढ़ी है, वह इस बात से परिचित है।

असंतुलन शिक्षा के क्षेत्र में

एक असंतुलन शिक्षा के क्षेत्र में बनता जा रहा है। एक ओर विद्यार्थी की सोच और समझ की शक्ति को बहुत प्रखर बनाया जा रहा है, सूक्ष्मग्राही बनाया जा रहा है, दूसरी ओर उसके आवेशों अथवा भावों को अपरिष्कृत रख रहे हैं। यह असंतुलन न केवल आज पारिवारिक स्थिति में बहुत गड़बड़ी पैदा कर रहा है, अपितु अपराध में भी बहुत सहयोग दे रहा है। स्थिति यह बन रही है कि सहन करना जैसे कोई जानता ही नहीं। तलाक की पूर्व भूमिका यहीं से बनती है। हिन्दुस्तान अभी पूरी तरह से इसकी गिरफ्त में नहीं आया है, किन्तु शुरुआत यहां भी हो गयी है। विकसित देशों में तलाक की घटनाएं आम हो चली हैं। अभी एक समाचारपत्र में इसके कुछ आंकड़े देखे। वहां प्रति ढाई मिनट में एक तलाक हो रहा है। यह सहनशीलता की कमी का दुष्परिणाम है। पति-पत्नी दोनों में से कोई भी सहनशील नहीं है तो तलाक और कलह नहीं होगा तो क्या होगा ? कोई अनपढ़ स्त्री होती तो सहन कर लेती, किन्तु दोनों हाई एजुकेटेड हैं तो कौन किसे सहन करे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पश्चिम देश की घटना है। एक महिला ने कोर्ट में पति से तलाक की अर्जी दी। कारण बताया गया—'सोते समय मेरा पति जोर-जोर से खर्राटे लेता है, इससे मेरी नींद में बाधा पड़ती है।' वहां खराटे, खांसी और छींक भी तलाक का कारण बन रहे हैं।

प्रशिक्षण किसलिए ?

इस प्रवृत्ति के समाधान का और कोई दूसरा उपाय दिखाई नहीं देता कि शिक्षा प्रणाली में कुछ सुधार लाया जाए, एक वर्ष तक कमाई करने के लोभ का संवरण किया जाए। इस चिंतन के साथ अच्छा जीवन जीने की कला का प्रशिक्षण लें। एक वर्ष इस काम के लिए होना चाहिए। एक वर्ष यदि इतनी बड़ी कमी को पूरा करने वाला बनता है तो इससे अच्छी और कोई बात नहीं हो सकती। इससे एक ऐसा वातावरण पैदा होगा, जिससे समाज अधिक स्वस्थ और परिवार अधिक सुखी होंगे। प्रश्न हो सकता है—इस एक वर्ष की अवधि में विद्यार्थी क्या पढ़ेगा ? सुना है—जापान में शिक्षा संपूर्ण करने के बाद विद्यार्थियों को छह महीने का एक कोर्स कराया जाता है। यह लगभग ध्यान का ही कोर्स होता है। इससे उनकी एकाग्रता की क्षमता बढ़ जाती है, मनोबल बढ़ जाता है, संकल्पशक्ति और सहन करने की क्षमता बढ़ जाती है। इस प्रशिक्षण के कारण आगे चल कर वे हर काम में सफल होते हैं। उनमें दायित्वबोध और कर्तव्यबोध की भावना भी जाग जाती है। यदि एक सामाजिक व्यक्ति में इतनी सारी विशेषताएं आ जाएं तो वह अपने राष्ट्र का सफल और श्रेष्ठ नागरिक कैसे नहीं बनेगा ?

सचाई दोनों ओर है

जरूरत केवल मस्तिष्क को प्रशिक्षित करने की है। ऐसा नहीं है कि व्यक्ति को बदला नहीं जा सकता। प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों से यह पूर्णतया सिद्ध हो चुका है कि व्यक्ति को बदला जा सकता है। उसके स्वभाव को, प्रवृत्तियों, रुचियों और आदतों को बदला जा सकता है। बदले हैं लोग। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण का तरीका सही नहीं है तो उसके वांछित परिणाम नहीं आएंगे, किन्तु तरीका सही है तो निश्चित रूप से परिवर्तन होगा। आदमी नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बदलता, इस कथन में भी सचाई है और आदमी बदलता है, इस कथन में भी सचाई है। सचाई दोनों ओर है। हम चाहे जिसको पकड़ लें। प्रश्न केवल सही तरीके का है। एक वर्ष का कोर्स केवल मस्तिष्क के प्रशिक्षण का कोर्स होगा, बुद्धि को जगाने का नहीं। बौद्धिकता तो वैसे ही बहुत बढ़ी है। आज के शिक्षा संस्थानों में बौद्धिक विकास और बौद्धिक क्षमता को जगाने के जितने साधन हैं, वे शायद अन्यत्र नहीं मिलेंगे। किन्तु आदमी को आदमी बनाने का प्रयत्न या पद्धति नहीं है, शान्ति और सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने की बात नहीं है, इस सचाई को भी स्वीकार करना होगा।

कब समझ में आएगी यह बात ?

शान्तिपूर्ण जीवन जीने की बात एक वर्ष में सिखाई जा सकती है। उसका केवल पाठ नहीं, प्रयोग और अभ्यास कराया जा सकता है। उस प्रशिक्षण के द्वारा मनुष्य ऐसा मस्तिष्क लेकर निकलेगा, जो अच्छा जीवन जीने में सहायक बनेगा। यह बात सबकी समझ में आयेगी या नहीं, आयेगी तो कब आयेगी, कहा नहीं जा सकता, क्योंकि ग्रहणशीलता में भी बहुत अन्तर होता है। जो भुक्तभोगी है, आज की शिक्षा की यातना भोग रहे हैं, उनके सामने यह बात रखी जाए तो वे बहुत जल्दी पकड़ लेंगे। हिन्दुस्तान के समाज ने अभी उतनी यातना नहीं भोगी है, जितना पश्चिम का समाज भोग चुका है। उच्छृंखलता यहां अभी उतनी नहीं है, जितनी पश्चिम में है। किसी बात को जल्दी पकड़ लेना जरा मुश्किल काम है। इसमें बाधाएं भी बहुत आती हैं।

दूसरी दुनिया में

संस्कृत साहित्य की कहानी है। राजा भोज के दरबार में एक संस्कृत कवि आया। राजा भोज की प्रशंसा में उसने सुन्दर श्लोक पढ़े। राजा प्रसन्न हो गया। मंत्री से कहा—'पंडितजी जो मांगें, उन्हें दिया जाए।' मंत्री ने पंडित कवि से पूछा—'मान्यवर, क्या चाहते हैं आप ?' पंडित को एक वाहन की जरूरत थी। वे बोले—'राजन् ! हमें एक अच्छा-सा घोड़ा दें।' राजा इच्छित वस्तु देने का आदेश दे चुका था, किन्तु बीच के लोग कहां मानने वाले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

थे। आज की जैसी स्थिति थी। सरकार जनता के लिए कुछ भी घोषित करे, बीच के लोग अपना हिस्सा निकाल ही लेते हैं। पंडित कवि ने घोड़ा मांगा तो राज्यकर्मचारियों ने आपस में परामर्श किया—'यह पंडित अच्छा घोड़ा लेकर क्या करेगा ? फलतः उन्होंने एक मरियल-सा घोड़ा पंडितजी को दे दिया और सूर्योदय से पूर्व ही उन लोगों ने पंडित को वहां से विदा कर दिया। बेचारे पंडित कवि का मन खिन्न हो गया। वह विद्वान् कवि चिंतनशील था। कर्मचारियों की धूर्तता से वह अनजान नहीं था। उस दिन तो वह चला गया, किन्तु दूसरे दिन फिर राजदरबार में पहुंचा। राजसभा में राजा को अभिवादन किया। राजा ने पूछा—'पंडितजी ! कैसे आए ?

कवि बोला—'बस, ऐसे ही अभिवादन करने चला आया।'

राजा ने पूछा—'घोड़ा तो मिल गया ?

'हां राजन्, मिल गया।'

'कैसा है ?'

'बहुत अच्छा है। इतना अच्छा कि उसके बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता।'

'दौड़ते में कैसा है ?

'राजन् ! इतना तेज कि एक ही रात में वह दूसरी दुनिया में जा पहुंचा है।'

अनिवार्य हो एक वर्ष का कोर्स

चिंतनशील और बौद्धिक लोग इस प्रश्न पर गंभीरता से सोचें। यह ऐसा प्रश्न है, ऐसी समस्या है, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती। इस पर सोचना पड़ेगा, कुछ करना पड़ेगा अन्यथा यह भयावह स्थिति समाज और राष्ट्र को पतन की ओर ले जायेगी। इसके लिए आवश्यक है—फाइनल परीक्षा के बाद विद्यार्थी के लिए एक वर्ष का यह कोर्स अनिवार्य कर दिया जाए। तेरापंथ बुद्धिजीवी मंच के लोग इस प्रयोग को स्वयं से शुरू करें। वे संकल्पित हों कि हमें अपने बच्चों को एक वर्ष का यह प्रायोगिक प्रशिक्षण देना ही है, जिससे उनका भावी जीवन सुखी और शान्तिमय बन सके।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जरूरत है अच्छे जीवन की

माता-पिता का काम अपने बच्चों को धन कमाने लायक बना देना ही नहीं है। अगर इतना करके ही वे अपने कार्य की इतिश्री मान लेते हैं तो मानना चाहिए—यह बच्चों को अंधकारपूर्ण भविष्य की ओर धकेलने की बात होगी, उन बच्चों के साथ न्याय नहीं होगा। सबसे पहली जरूरत है—वे अच्छा जीवन जीएं। दूसरी जरूरत है—अच्छा जीवन जीने के साधन स्वयं खोज सकें। आज दूसरी बात में रस कुछ ज्यादा है। परिवार का सदस्य कैसे उद्योग लगा सके, व्यापार चला सके, अच्छी नौकरी कर सके, इसमें तो काफी दिलचस्पी है। इसमें कहीं न कहीं उनका स्वार्थ जुड़ा हुआ है। किन्तु पहली बात—'अच्छा जीवन जी सकें'—की घोर उपेक्षा की जा रही है। ध्यान इस ओर गया नहीं या दिलाया नहीं गया, अथवा जानबूझ कर गहराई से चिंतन नहीं किया गया। कहीं न कहीं त्रुटि अवश्य है। इस पर गंभीरता से चिंतन होना चाहिए और उन लोगों को यह चिंतन करना चाहिए, जो बुद्धिजीवी कहलाते हैं, जिनमें सोचने, समझने और विचार करने की क्षमता है। वे सोचें—शिक्षा का वह ढर्रा, जो सरकार ने थोप दिया है, वही चलेगा या उसके अतिरिक्त भी बच्चे को कुछ सिखाया जा सकेगा ?

समाधान है त्रिवेणी

इन दस वर्षों में सैंकड़ों लोगों से हमने सुना है—हमने तो बच्चे को किस आशा से पढ़ाया था और आज क्या देख रहे हैं ? कुछ लोग तो यह भी कह देते हैं—'ऐसा जानते तो हम पढ़ाते ही नहीं, इतना पैसा क्यों लगाते ? हमने तो बड़ी-बड़ी आशाएं लगा रखी थीं, सारी धूल में मिल गयीं।' यह निराशा, अवसाद और दुःख का स्वर बहुत सुनने को मिलता है। केवल किसी एक समाज विशेष में नहीं, बल्कि व्यापक स्तर पर यह स्वर सुनने को मिलता है। किन्तु इसके निवारण का लोगों को कोई उपाय सूझ नहीं रहा है। अणुव्रत, प्रेक्षाध्यान, जीवन विज्ञान—इस त्रिवेणी में निमज्जन और अवगाहन से जो एक समाधान निकला है, वह यह है कि एक वर्ष का कोर्स और जोड़ दिया जाए। सरकारी स्तर पर ऐसा किया जा सकेगा या नहीं ? इस प्रश्न का उत्तर सकारात्मक नहीं दिया जा सकता, क्योंकि वहां आंकड़ों और गणित की भाषा ज्यादा चलती है, यथार्थ की कम। किन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समाज और परिवार के स्तर पर यह काम किया जा सकता है। हमारा विश्वास है—यदि यह प्रयोग शुरू हो जाए तो इसका अनुसरण भी बहुत होगा। जब पूज्य गुरुदेव ने 'नया मोड़' का संदेश दिया था, उस समय यह बात बहुत कठिन लग रही थी, किन्तु समाज ने अन्ततः उसे स्वीकारा। अपने आप बिना किसी प्रेरणा के उसका अनुसरण होना शुरू हो गया। दूसरे समाज के लोग भी उसका अनुसरण करने लग गये। उन्होंने यह कहते हुए 'नया मोड़' को अपनाया—'यह तो बड़ी अच्छी बात है।' अगर शिक्षा के क्षेत्र में आज जीवन विज्ञान की इस बात को गंभीरता से लिया जाता है, प्रयोग शुरू किये जाते है तो एक दशक के भीतर ही यह इतना व्यापक बनेगा कि बिना किसी प्रेरणा के लोग इसका अनुकरण करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और शान्ति

एक पिता ने अपने चार पुत्रों को बुलाया, उनसे पूछा—'बताओ, सबसे अच्छा मौसम कौन-सा होता है ?' पहला पुत्र बोला—'सर्दी का मौसम सबसे अच्छा होता है। न पसीना आता है, न लुएं चलती हैं, न धूल भरी आंधियां आती हैं, दिमाग भी बहुत ठंडा रहता है।' दूसरे ने कहा—'सर्दी के मौसम की बात से मैं सहमत नहीं हूं। मेरी दृष्टि में गर्मी का मौसम सबसे अच्छा होता है। सर्दी में ढेर सारे कपड़ों में भी कंपकंपी छूटती रहती है। बिना पर्याप्त व्यवस्था के कहीं बाहर जा भी नहीं सकते, इसलिए मेरी दृष्टि में गर्मी का मौसम सबसे अच्छा है।' तीसरे ने कहा—'सबसे अच्छा मौसम है बरसात का। न अधिक सर्दी, न अधिक गर्मी। घिरी हुई काली घटाएं और बरसते पानी की फुहारें किसे अच्छी नहीं लगतीं ? भरे हुए तालाब और नदियां, चारों ओर झूमती हुई हरियाली किसका मन नहीं मोहती ? बरसात से अच्छा मौसम और कोई नहीं है।' चौथा सबसे छोटा लड़का क्या बताता ? तीन मौसम श्रेष्ठ बताए जा चुके थे लेकिन लड़का प्रबुद्ध था। उसने कुछ सोचा, फिर कहा—'पिताजी ! मैं समझता हूं—'जो शान्ति से गुजर जाये, वही मौसम सबसे अच्छा है।'

समस्या अशांति की

शांतिपूर्ण जीवन मनुष्य की चिर अभिलाषा रही है। शांति बनी रहे यह सबसे अच्छी बात है। एक डॉक्टर ने कहा—'महाराज ! मैं शरीर से पूरी तरह स्वस्थ हूं। कोई शारीरिक बीमारी नहीं है किन्तु मेन्टली अपसेट हूं। जाना चाहता हूं पूरब में किन्तु चला जाता हूं पश्चिम में। जो काम करना चाहता हूं, वह नहीं होता किन्तु उसके स्थान पर दूसरा कर डालता हूं। मानसिक दृष्टि से बहुत बीमार हूं।' बड़ी विचित्र बात थी—दूसरों की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चिकित्सा करने वाला, दूसरों को स्वस्थ करने वाला स्वयं को अस्वस्थ बता रहा था। शरीर से वह हट्टा-कट्टा और स्वस्थ दिखाई देता था, किन्तु मन से वह अस्वस्थ था।

चेतना के तीन स्तर

प्रश्न है—हमें शरीर चला रहा है या मन चला रहा है ? इस शरीर को मन चला रहा है तो मन को कौन चला रहा है ? मन को भाव चला रहा है। शरीर, मन और भाव—ये हमारे जीने के तीन स्तर हैं। हमारी चेतना तीन स्तरों पर काम कर रही है। पहला स्तर है शरीर का, दूसर स्तर है मन का और तीसरा स्तर है भावना का। सबसे पहले हमारे सामने आता है शरीर। हम शरीर के आधार पर निर्णय लेते हैं—व्यक्ति कैसा है ? जिसे हृष्ट-पुष्ट और मांसल देखा, उसे हम स्वस्थ मान लेते हैं। यह है हमारी स्थूल दृष्टि। केवल चमड़ी और चर्बी को देखकर अनुमान लगा लेते हैं अथवा रंग और आकार को देखकर एक दृष्टि बना लेते हैं। भीतर की बात समझ में नहीं आती। वह कितना दुःख पा रहा है, इसका बोध शरीर से नहीं होता। जब मन स्वस्थ नहीं है तो सुख पाने का प्रश्न ही नहीं होता। शरीर से मन सूक्ष्म है, इसलिए हम उसे नहीं पकड़ पाते, वह हमारी दृष्टि में नहीं आता। मन अस्वस्थ इसलिए है कि भावनाएं स्वस्थ नहीं हैं। भावना मन से भी ज्यादा सूक्ष्म है।

भावना से जुड़ा है शान्ति का प्रश्न

शान्ति का प्रश्न शरीर से जुड़ा हुआ नहीं है। मन से कुछ जुड़ा हुआ है, किन्तु मन से भी पूरा जुड़ा हुआ नहीं है। वह जुड़ा हुआ है भावना से। जब तक भावनात्मक संतुलन नहीं होता, शान्ति की बात नहीं सोची जा सकती। कोई भी आदमी तब तक शान्ति का जीवन नहीं जी सकता, जब तक वह भावना का संतुलन न साधे। भावनात्मक दृष्टि से आदमी बहुत असंतुलित रहता है। उसी डॉक्टर ने बताया—मैं बहुत चिड़चिड़ा हो गया हूं। बात-बात में गुस्सा आता है। कुछ अजीब-सा स्वभाव बन गया है। मैंने कहा—'तुम इस धारणा को बदलो कि मेंटली अपसेट हो। तुम यह कहो—मैं मेंटली नहीं, इमोशनली अपसेट हूं। भावनात्मक दृष्टि से मैं स्वस्थ नहीं हूं,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसलिए मन बीमार है और मन बीमार है, इसलिए सारा स्वभाव बिगड़ गया है, व्यवहार में अन्तर आ गया है।'

व्यवहार क्यों बदलता है ? स्वभाव क्यों बदलता है ? आदतें क्यों जटिल बनती हैं ? इसका कारण है कि भावना के स्तर पर हमारी चेतना ठीक काम नहीं करती। जब तक उस स्तर पर पहुंच कर हम नहीं सोचेंगे, परिवर्तन कभी संभव नहीं होगा। शरीर को स्वस्थ रखने के लिए दवाइयां दी जाती हैं। मानसिक स्वस्थता के लिए भी बहुत सारी शामक औषधियां प्रचलन में हैं किन्तु इनसे मूल बात पकड़ में नहीं आती। मन स्वस्थ तभी होगा, जब भावनाएं स्वस्थ होंगी। दवा और औषधि से इनका उपचार नहीं होगा। जब दवा में हम इनका समाधान ढूंढ़ने लगते हैं, तब समस्या उलझती चली जाती है। जो एक बार उलझ गया, वह फिर इसमें से निकल नहीं पाता।

ऊर्जा संवर्द्धन के प्रयोग

शान्ति का प्रश्न हमारी गहरी चेतना के साथ जुड़ा हुआ है। ध्यान का प्रयोग इसीलिए किया जाता है कि हम उस चेतना के स्तर तक पहुंच सकें, वहां पहुंचकर अपने आपको समझ सकें, देख सकें और अपने आपको स्वस्थ बना सकें। ध्यान का प्रयोग भावना को परिष्कृत करने का प्रयत्न है। परिष्कार कब संभव है ? वह सिद्धान्ततः संभव नहीं है, पढ़ने से संभव नहीं है, जान लेने मात्र से संभव नहीं है। उसके लिए विशेष प्रकार की शक्ति का अर्जन जरूरी है। दीर्घश्वास का प्रयोग, आसन का प्रयोग, शरीर को देखने का प्रयोग—ये जितने प्रयोग हैं, वे सब प्राणऊर्जा के संवर्द्धन के प्रयोग हैं। इनसे प्राणशक्ति बढ़ती है। यह निश्चित तथ्य है--शक्ति और शान्ति को कभी अलग नहीं किया जा सकता। कमजोर आदमी कभी शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। शान्ति का अनुभव वही कर सकता है, जो शक्तिसंपन्न है। कमजोर आदमी का काम तो भीख मांगना होता है, वह कभी संपन्न नहीं हो सकता। हमारा शरीर, मन और भावना का तंत्र कमजोर है और हम शान्ति की कामना करें, तो यह कभी संभव नहीं है। जिसके ये तंत्र कमजोर हैं, वह जरा-सी प्रतिकूल बात सुनते ही उत्तेजित हो जायेगा। पूरे दिन का खाना-पीना हराम जो जायेगा। छोटी-सी प्रतिकूल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बात से उसकी शान्ति विलीन हो जाती है। मन उद्विग्न हो जाता है। कमजोर और शक्तिहीन आदमी कभी शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता।

शक्ति और शान्ति

शान्ति की पहली शर्त है शक्ति का विकास। हम शक्तिशाली बनें, अपनी शक्ति का विकास करें। क्रम से चलें—पहले स्तर पर है भावनात्मक शक्ति का विकास। दूसरे पर है मानसिक शक्ति या मनोबल का विकास और तीसरे स्तर पर है शारीरिक शक्ति का विकास। नाड़ीतंत्र भी मजबूत होना चाहिए। ग्रन्थि तंत्र भी मजबूत और स्वस्थ होना चाहिए। शारीरिक शक्ति का मतलब शारीरिक सौष्ठव नहीं है, बहुत वजन उठा लेना या कुश्ती जीतना नहीं है। शारीरिक शक्ति के विकास का अर्थ है नाड़ीतंत्र, ग्रन्थितंत्र, मस्तिष्क और पृष्ठरज्जु का सुदृढ़ होना। ये तीनों शक्तियां जिसमें विकसित होती हैं, उसे शक्तिशाली कहा जा सकता है। इस सूत्र को सामने रखें—शक्ति के बिना शान्ति नहीं है। भावनात्मक विकास, मनोबल का विकास और शारीरिक विकास—इस समुच्चय का अर्थ है शान्ति।

वह शान्ति कैसे लाएगा ?

व्यक्ति को सबसे पहले अपने आप में शान्ति का अनुभव करना है। जब व्यक्ति शान्ति का अनुभव स्वयं में नहीं करता है, तो परिवार में शान्ति की कल्पना नहीं की जा सकती। पारिवारिक शान्ति पहली बात नहीं है। पहली बात व्यक्ति की अपनी शान्ति है। जो व्यक्ति स्वयं अशान्त है, वह परिवार में शान्ति कैसे ला सकेगा ?

अध्यापक ने विद्यार्थी से गणित का एक सवाल पूछा—'बताओ, तुम्हारी मां एक घण्टे में जो काम करती है, उसमें तुम्हारे पिता भी सहयोग करें तो उस काम में कितना समय लगेगा ? विद्यार्थी बोला—'सर, दो घंटे।' अध्यापक ने कहा—'तुम होश में तो हो। एक घण्टे में एक आदमी किसी काम को कर रहा है, उसमें एक और व्यक्ति जुड़ जाए तो काम कम समय में होगा या ज्यादा समय में ? विद्यार्थी ने कहा—'आप शायद मेरे पिता और मां से परिचित नहीं हैं। जब वे दोनों किसी एक काम में लगेंगे तब डेढ़ घंटा तो आपस में लड़ेंगे, झगड़ेंगे, बाद में काम आधे घण्टे में होगा।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गणित की भाषा

जब व्यक्ति स्वयं अशान्त होता है तब यही स्थिति बनती है। काम कम होता है और झगड़ा ज्यादा होता है। हर बात में इतना ज्यादा विवाद होता है कि काम गौण हो जाता है। ऐसा इसलिए होता है कि व्यक्ति भावनात्मक स्तर पर विकसित नहीं है। आज यह कहने में संकोच नहीं है कि जो व्यक्ति अपने आपको बहुत विकसित और एडवांस मानते हैं, अग्रगामी और प्रगतिशील मानते हैं, वे भावना के स्तर पर शायद उतने विकसित नहीं हैं। वे बौद्धिक हैं, उनमें सोचने, समझने की क्षमता भी है, किन्तु भावना के स्तर पर वे विकसित नहीं हैं। जब तक व्यक्ति भावना के स्तर पर विकसित नहीं होता है तब तक सचमुच आधा घण्टा के स्थान पर दो घण्टे लगते हैं और शायद दस घण्टे भी लग सकते हैं। मैंने इस पर बहुत सोचा, गणित लगाया—मनुष्य कितने घंटे काम करता है ? वह गणित यह है—पूरे दिन चौबीस घंटे में करने योग्य जरूरी काम चार-पांच घंटे से ज्यादा का नहीं होता। इससे ज्यादा काम किसी के पास नहीं होता। इससे ज्यादा काम वह कर भी नहीं सकता। कोई भी व्यक्ति अपनी मस्तिष्कीय शक्ति का चार-पांच घंटे से ज्यादा का उपयोग नहीं कर सकता। यदि वह ज्यादा खींचतान कर काम करता है तो वह बासी काम होगा, ताजा काम नहीं होगा। काम तो थोड़े समय का ही होता है। ज्यादा काम तो निकम्मा काम होता है। सभा-संस्था, पंचायत, गोष्ठी आदि में तो सबसे ज्यादा समय का दुरुपयोग होता है। सभा-संस्थाओं की मीटिंगों में खोदा जाता है पहाड़ और निकलती चुहिया भी नहीं है। ऐसा क्यों हो रहा है ? कारण सिर्फ यही है कि भावनात्मक स्तर पर आज भी समाज विकसित नहीं है। शारीरिक स्तर पर विकसित हो सकता है, बौद्धिक और आर्थिक स्तर पर विकसित हो सकता है पर भावनात्मक स्तर पर आज भी बहुत अविकसित है। फिर कैसे शान्ति की बात सोची जा सकती है ?

समस्या परिवार की

परिवार की समस्या एक बहुत बड़ी समस्या है। धार्मिक जगत् के सामने भी एक बहुत बड़ा प्रश्न है। आपने शायद कभी अनुभव न किया हो किन्तु हमें इसका अनुभव बराबर होता है। धार्मिक परिवार जब परस्पर भावनात्मक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दृष्टि से सामंजस्य नहीं रख पाते हैं तो एक प्रकार से धर्म के सामने प्रश्नचिह्न खड़ा कर देते हैं। एक भाई से मैंने पूछा—'तुम साधुओं के पास जाते हो ?' उसने कहा—'नहीं।' मैंने फिर पूछा—'क्या धर्म के प्रति तुम्हारे मन में आस्था नहीं है ?' बोला—'नहीं, आस्था तो बहुत है, किन्तु मेरे मन में एक प्रतिक्रिया है। मेरे पिता प्रतिदिन पांच-सात घंटे साधुओं के पास बिताते हैं पर घर में जितनी लड़ाई वे करते हैं, शायद कोई नहीं करता।

क्या धर्मस्थान में साधुओं के पास जाने का अर्थ लड़ाई सीखना है ? वह तो गली-मौहल्लों में सीखी जा सकती है, साधुओं के पास क्यों ? बहुत से लोगों के मन में यह प्रश्न है कि हमारे जो बड़े-बूढ़े और बुजुर्ग हैं, वे धर्म की बड़ी साधना करते हैं पर घर में उन्हें लड़ते-झगड़ते देखकर नहीं लगता कि धर्म से जीवन में कोई परिवर्तन आता है।

उत्तरदायी है लोभ और क्रोध

धर्म को मानने वाले व्यक्ति भावनात्मक स्तर पर सामंजस्य नहीं बिठा पाते हैं, परस्पर में सौहार्द और सद्भावना नहीं रख पाते हैं, तो स्थिति जटिल बनी रहती है। यदि भावनात्मक स्तर पर समाज विकसित होता, व्यक्ति और परिवार विकसित होता तो कभी भी अपने हिस्से से ज्यादा पाने की कोशिश नहीं की जाती। किन्तु लोभ ऐसा करा रहा है। परिवार में या तो क्रोध के कारण स्थितियां जटिल बनती हैं या लोभ के कारण। लोभ स्वार्थ की भावना को प्रबल बनाता है। क्रोध उत्तेजना के वातावरण को प्रबल बनाता हैं। ये दोनों ही स्थितियां परिवार और व्यक्ति के जीवन में जटिलता लाती है। न क्रोध का संतुलन और न लोभ का संतुलन। हम ध्यान ही नहीं देते इन संवेगों पर। कितनी भयंकर बीमारी हैं ये दोनों किन्तु इन पर कभी हमारा ध्यान ही नहीं जाता। थोड़ा-सा बुखार होता है तो तत्काल डॉक्टर को बुला लेते हैं, थोड़ा-सा शरीर में कहीं दर्द हो जाता है तो डॉक्टर की शरण ले लेते हैं। बड़े आदमी को जुकाम और छींक आ जाने पर भी डॉक्टर को फोन कर बुला लेते हैं और शरीर का पूरा परीक्षण करवाते हैं। समाचार-पत्रों में अनेक बार ऐसी खबरें छपती हैं—अमुक राजनेता या मंत्रीजी को जुकाम हो गया इसलिए उस दिन के सारे कार्यक्रम रद्द कर दिये गये। इतनी चिन्ता है जुकाम की और क्रोध चाहे भयंकर आ जाये, लोभ चाहे असीमित हो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाये, किन्तु मन में कभी आयेगा ही नहीं कि बीमार हो गया हूं। समस्या यही है कि शरीर की तो इतनी चिन्ता करते हैं और शरीर को चलाने वाले भावनातंत्र के प्रति हम इतने गैर जिम्मेदार हैं। हम कैसे कल्पना करें कि जीवन में शान्ति आयेगी ? कैसे परिवार और समाज में शान्ति रहेगी ?

चिन्तनीय है प्रकट होना

यह सामान्य प्रश्न नहीं है। बहुत बड़ा सवाल है यह। इसकी ओर ध्यान आकर्षित होना बहुत आवश्यक है। हम केवल शारीरिक चिन्ताओं में लगे रहे तो फिर समाज जैसे चल रहा है, वैसे ही चलेगा। अपराध, चोरियां और हत्याएं सब चलेंगे। एक ओर हम भावनात्मक स्तर पर अविकसित हैं, दूसरी ओर बुराइयों की चिन्ता भी करते हैं। समाज में आ रही बुराइयों का रोना तो सभी रोते हैं, किन्तु उसके कारणों को जानकर भी अनदेखा कर रहे हैं। होना तो यह चाहिए—जहां से ये बुराइयां आ रही हैं, वहां जाकर चिंता करें। जहां से ये बुराइयां नहीं आ रही हैं, केवल प्रकट हो रही हैं, वहां के लिए हमारी चिन्ता है। इसका मतलब यह हुआ कि प्रकट होना चिन्तनीय बात है, छिपा रहना चिंता की बात नहीं है। शरीर में कैंसर है, कोई चिन्ता नहीं, चाहे वह वर्षों तक अनजान रहे। जब प्रकट हो जाता है तब नींद उड़ जाती है, चिन्ता सिर पर सवार हो जाती है। जब तक अन्तर्व्रण भीतर में पलता रहा तब तक कुछ भी अनुभव नहीं हुआ। जैसे ही लक्षण प्रकट हो गए, मनुष्य चिन्ता से आकुल बन गया।

प्रश्न है सार्थक चिन्ता का

हम चिन्ता कहां करें ? इस बिन्दु पर हमें सोचना है। आज बहुत सारे लोग विश्वशान्ति की चिन्ता करते हैं। हमारे पास आते हैं, सुझाव देते हैं—विश्वशान्ति के बारे में कुछ बोलना चाहिए, लिखना चाहिए और प्रचार करना चाहिए। यह बात तो बहुत अच्छी है, किन्तु लगता है कि यह कोई सार्थक चिन्ता नहीं है। विश्वशान्ति का प्रश्न जटिल है, किन्तु वह क्या कभी सुलझ पायेगा ? हमने विश्वशान्ति का दरवाजा ही बन्द कर रखा है। जब दरवाजा ही नहीं खुलेगा, विश्वशान्ति की बात कैसे होगी ?

एक वैद्य था। अवस्था से वृद्ध। दूसरी मंजिल पर बैठता था। जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रोगी आते, उन्हें दवाइयां देता। उसने एक नया-नया नौकर रखा पर वह समझदार नहीं था। शाम का समय। वैद्य बैठा जम्हाइयां ले रहा था। रात आ गई। वैद्य बोला—'भाई ! आज का दिन तो अच्छा नहीं रहा। नौ बज गये। अब कौन आयेगा ? नौकर बोला—'आप लेट जाएं, मैंने दरवाजा तो पहले ही बन्द कर रखा है, आयेगा कौन ?

शीत-युद्ध

विश्वशान्ति के लिए दरवाजे तो पहले ही बन्द कर रखे हैं। आज कितने युद्ध हो रहे हैं ? वे युद्ध भावनात्मक स्तर पर लड़े जा रहे हैं। इसे एक नाम दिया गया 'शीतयुद्ध।' प्रत्यक्ष जो लड़ा जाता है, वह गर्मागर्म होता है। अप्रत्यक्ष रूप से लड़े जा रहे युद्ध को शीतयुद्ध कहा जाता है। सारी तैयारी भावनात्मक स्तर पर हो रही है। एक राष्ट्र अणुअस्त्रों का अंबार लगा रहा है, दूसरा राष्ट्र उससे ज्यादा मारक और घातक अस्त्रों के निर्माण की बात सोच रहा है, यह क्यों हो रहा है ? भय के कारण हो रहा है। एक-दूसरे से सब डरे हुए हैं। एक डरता है—दूसरा कहीं हमें दबोच न ले। दूसरा डरता है कि तीसरा हमें हड़प न ले।

जंगल जा रहे आदमी से उसकी मां ने कहा—'बेटा ! और किसी से नहीं, शेर से डरना। शेर की मां ने अपने बच्चे से कहा—'बेटा ! तुम्हें किसी से डरने की जरूरत नहीं है, हाथी से भी नहीं, बस तू काले सिर वाले आदमी से डरना।' एक दिन आदमी गया जंगल में। सामने शेर आता दिखाई दिया। शेर डरा और आदमी भी डरा। अन्ततः दोनों मिले। शेर ने पूछा—'तू डरकर भागा क्यों ?' आदमी ने भी पूछा—डरे तो तुम भी थे। मेरी मां ने कहा था कि शेर से डरना। शेर ने कहा—'मेरी मां ने भी कहा था कि काले सिर वाले से डरना।'

भावना के स्तर पर

भय दोनों ओर से है। शेर आदमी से डर रहा है और आदमी शेर से डर रहा है। हम भावनात्मक स्तर पर एक-दूसरे से घबरा रहे हैं, डर रहे हैं। इसीलिए सारे शस्त्रों का विकास हुआ है। जिस आदमी ने लाठी बनाई या प्रस्तर युग में पत्थर का कोई अस्त्र बनाया, उसने डर कर बनाया। सारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शस्त्रों का निर्माण भावना के स्तर पर हुआ है। जिसने भी डर या भय का अनुभव किया, उसने प्रतिकार स्वरूप शस्त्रों का निर्माण किया। जिस आदमी ने अणुबम बनाया, उसने भी भय के कारण बनाया। प्रस्तरयुग से लेकर अणुअस्त्रों के युग तक सारे शस्त्रों का विकास भावना के स्तर पर हुआ है। हमारा बहुत बड़ा जगत् है भावना का जगत्। हम इस को ओझल कर सारी बात सोच रहे हैं और यही समस्या को जटिल बना रहा है।

विश्वशान्ति की बात एक बार छोड़ दें। पारिवारिक शान्ति की बात को भी एक बार नजरअंदाज कर दें। सबसे पहले व्यक्तिगत स्तर पर शान्ति की बात सोचें—मैंने अपनी भावनाओं का परिष्कार किया है या नहीं। अगर किया है तो आपके मन में शान्ति होगी। आपके मन में शान्ति है तो आपके परिवार में शान्ति है। सबको अभयदान मिल गया। यदि आपने अपनी भावनाओं को परिष्कार नहीं किया तो न आपके मन में शान्ति, न परिवार में शांन्ति, न समाज में शान्ति और न विश्व में शान्ति। कहीं भी शान्ति नहीं रहेगी।

चिन्तन का केन्द्र बिन्दु

हमारे चिन्तन का केन्द्र बिन्दु है भावना जगत् का परिष्कार। प्रेक्षाध्यान का प्रयोग केवल भावना के परिष्कार का प्रयोग है। हमारी भावनाएं किस प्रकार परिष्कृत हों ? क्रोध, अहंकार, लोभ, घृणा, भय, ईर्ष्या, कामवासना—ये कैसे आनुपातिक बन सकें, संतुलित बन सकें, इनकी उच्छृंखलता कैसे कम हो, इनका जहरीलापन कैसे कम हो, कड़वाहट कैसे कम हो ? आज की सबसे बड़ी समस्या है भावनाओं का असंतुलन और भावनाओं की उच्छृंखलता। लड़ाई-झगड़ा और कलह—ये सब उसी के परिणाम हैं, जो हमारे सामने आ रहे हैं।

भगवान् महावीर का एक प्रसिद्ध वचन है—'**संति निव्वाणमाहियं**—शान्ति का अर्थ है निर्माण। मोक्ष और शान्ति दोनों एक ही बात है' चाहे शान्ति कहें या निर्वाण कहें। जिसके भावना की शान्ति हो गयी, उसका जीते जी निर्वाण हो गया। जितने भी तीर्थंकर हुए हैं और होने वाले हैं, उन सबकी आधारभूमि शान्ति ही है। किन्तु यह शान्ति कब संभव है ? इस प्रश्न को हमने गौण बना दिया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आज मनोविज्ञान में दो प्रकार के भावों की चर्चा बहुत होती है—निषेधात्मक भाव और विधेयात्मक भाव। ये सारे निषेधात्मक भाव क्या हैं ? बुरे भाव, मूर्च्छा के भाव निषेधात्मक भाव हैं। हमारे उज्ज्वल और विशुद्धभाव विधेयात्मक भाव हैं। जब तक ये निषेधात्मक भाव हैं, शक्ति और शान्ति की बात कभी सोची भी नहीं जा सकती। शान्ति की बात तभी सोची जा सकती है, जब निषेधात्मक भाव कम हो और विधेयात्मक भावों की प्रबलता हो।

शान्ति का मार्ग

प्रेक्षाध्यान का अर्थ है, विधायक भावों का विकास करना और निषेधात्मक भावों को कम अथवा शान्त करना। प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करने वाले इस सचाई का गहराई से अनुभव करेंगे। श्वास को देखना, चैतन्य केन्द्रों पर ध्यान करना मात्र एक माध्यम है, मंजिल नहीं। इनके द्वारा हम चेतना के उस स्तर पर पहुंचना चाहते हैं, जहां हमारी भावनाएं काम कर रही हैं। वहां पहुंच कर हम भावनाओं का संतुलन बना सकें, उनका परिष्कार कर सकें। वह हमारी मंजिल है पर उसके पूर्व पथ और गंतव्य दोनों का विवेक करना है। हम रास्ते को मंजिल न मान लें। यह विवेक बिना ध्यान की आराधना के संभव नहीं है।

आज के इस भीड़भरे कोलाहलमय वातावरण में जीने वाला आदमी यदि ध्यान का सहारा नहीं लेता है और उसके माध्यम से अपनी भावनाओं का परिष्कार करना नहीं जानता है तो मुझे लगता है इस विकसित युग में अविकसित लोगों को भीड़ और बढ़ जायेगी। संसार में आज जो भयानक स्थिति व्याप्त हो रही है, उससे बचने के लिए ध्यान के द्वारा शान्ति के मार्ग का अनुसरण करें, उसी में व्यक्ति और समाज की भलाई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धर्म और स्वास्थ्य

ध्यान का प्रयोग करना एक प्रवृत्ति है, किन्तु प्रयोजन उससे भिन्न है और वह है जागरूकता का विकास। जीवन के प्रति वर्तमान समस्याओं के प्रति जागरूकता आए। जो सोया हुआ जीवन है, मूर्च्छा का जीवन है, प्रमाद और आलस्य का जीवन है, वह टूटे और व्यक्ति सतत जागरूक बन जाये। हर वस्तु के प्रति जागरूकता बढ़े, जीवन का दृष्टिकोण बदल जाये। सामान्य व्यक्ति जिस दृष्टि से देखता है, उसी दृष्टि से न देखे, देखने का कोण बदल जाये। जो भी करे, करने से पहले जागरूकता बरतें और फिर प्रवृत्ति करें।

मूर्खों की सूची में

बादशाह के पास एक सौदागर आया। उसने एक लाख रुपये मांगे। विश्वास दिलाया—इससे मैं अपना व्यापार बढ़ाऊंगा और समय पर रुपये वापस कर दूंगा। बादशाह ने उसकी बात स्वीकार कर ली, लाख रुपये उधार दे दिये। कुछ दिन बीत गये। एक दिन बादशाह ने बीरबल से कहा—'मेरे मन में एक कल्पना आई है, वह साकार कैसे हो ?' बीरबल ने कहा—'आप बताएं, उसे साकार मैं करूंगा।' बादशाह ने कहा—'मेरे राज्य में मूर्ख कितने हैं ?, इसकी एक सूची बनाओ।' बीरबल बोला—'बना दूंगा।' दूसरे दिन बीरबल मूर्खों की सूची लेकर बादशाह के पास हाजिर हो गया। बादशाह ने सूची देखी। मूर्खों में पहला नाम अपना देखकर बादशाह अवाक् रह गया। बादशाह ने प्रश्नायित आंखों से बीरबल की ओर देखा। बीरबल बोला—'जहांपनाह ! यह सूची मूर्खों की ही है। आप चौंकें नहीं । इस राज्य में सबसे बड़े मूर्ख आप ही हैं।'

बादशाह ने पूछा—'कैसे ?'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बीरबल बोला—'जिसे आप जानते नहीं, पहचानते नहीं, जिससे कभी कोई काम नहीं पड़ा, जिसका कोई पता-ठिकाना आपको मालूम नहीं, उसे एक लाख की इतनी बड़ी रकम उधार दे देना मूर्खता नहीं है तो और क्या है ? खजाने का इतना बड़ा दुरुपयोग आप कर रहे हैं। स्वयं के प्रति भी जागरूक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आप मूर्ख ही कहे जाएंगे।'

बादशाह को अपनी भूल का अहसास हुआ। सहसा उनके चेहरे पर चमक आ गई, कहा—'बीरबल ! अगर उस आदमी ने वायदे के अनुसार रकम ठीक समय पर लौटा दी तो ?

बीरबल बोला—'हुजूर ! तब आपका नाम इस सूची से काट दूंगा और आपके स्थान पर उसका नाम लिख दूंगा।'

समाज और व्यक्ति

जो व्यक्ति समस्या के प्रति, वर्तमान के प्रति जागरूक नहीं होता, वही मूर्ख कहा जायेगा। सामाजिक और पारिवारिक जीवन में सबसे पहली आवश्यकता है जागरूकता की। आप सामाजिक जीवन जीते हैं, किन्तु व्यक्तिगत जीवन भी उससे अलग नहीं है। सामाजिक जीवन के दो पहलू हैं—समाज का जीवन और व्यक्ति का जीवन। व्यक्ति का जीवन समाज के जीवन से अलग नहीं होता और समाज का जीवन भी व्यक्ति के जीवन से अलग नहीं होता। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। एक को सामने रखें तो दूसरा गौण बन जायेगा। दूसरे को सामने रखें तो पहला गौण बन जायेगा। किन्तु दोनों को अलग-अलग करके नहीं देखा जा सकता। सामाजिक जीवन जीना है और साथ-साथ व्यक्तिगत जीवन भी जीना है।

पहला सुख निरोगी काया

जीवन का सबसे बड़ा सूत्र, जिसके प्रति हमारी जागरूकता बढे, वह है स्वास्थ्य। स्थानांगसूत्र में भगवान् महावीर ने दस प्रकार के सुख बतलाए हैं। उनमें पहला सुख है आरोग्य। प्रचलित कहावत है—'पहला सुख निरोगी काया।' शरीर का निरोग होना पहला सुख है। यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वास्थ्य अच्छा है, शरीर निरोग है तो सारे सुख आ जाते हैं। यदि स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो सुख के सारे साधनों के बावजूद व्यक्ति दुःख ही भोगेगा। प्रश्न है—'क्या आप अपने स्वास्थ्य के प्रति जागरूक हैं ?' यदि हैं तो मानना होगा—आपने ध्यान किया है। यदि स्वास्थ्य के प्रति जागरूक नहीं हैं, मूर्च्छा में हैं तो आपके लिए ध्यान करना और भी ज्यादा जरूरी हो जाता है। क्या आपने कभी स्वास्थ्य के बारे में सोचा है ? आप जानते हैं कि स्वास्थ्य का मूलमंत्र क्या है ? संभवतः सौ में पंचानवे व्यक्ति यह कभी नहीं सोचते कि स्वास्थ्य का मूलमंत्र क्या है ? स्वास्थ्य का रहस्य क्या है ? व्यक्ति स्वस्थ कैसे रह सकता है, इस पर प्रायः सोचा ही नहीं जाता।

संवेग का संतुलन

प्रेक्षाध्यान के संदर्भ में इस विषय पर बहुत चिंतन हुआ है कि स्वास्थ्य का मूल कारण क्या है ? पहला सूत्र क्या है ? स्वास्थ्य का पहला सूत्र है संवेग का संतुलन। जो व्यक्ति अपने संवेगों को संतुलित करना नहीं जानता, अपने आवेश पर कंट्रोल करना नहीं जानता, वह स्वस्थ नहीं रह सकता। यह तथ्य आज की वैज्ञानिक खोजों से प्रमाणित हो चुका है। प्राचीनकाल में आयुर्वेद के आचार्यों ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला था—अमुक रोग भय से पैदा होता है, अमुक रोग क्रोध से पैदा होता है और अमुक रोग लोभ से पैदा होता है। आयुर्वेद के ग्रंथों में बताया गया है—जिसमें लोभ का संवेग ज्यादा होता है, उसमें अरुचि का रोग पैदा हो जाता है। उसे भोजन के प्रति अरुचि हो जाती है। दिल्ली में पूज्य गुरुदेव हिन्दुस्तान के एक बड़े उद्योगपति की कोठी में ठहरे हुए थे। हमने उसका जीवन व्यवहार देखा—वह रोटी खाता है तो सुख से नहीं खाता। हर समय फोन की घंटियां बजती रहती हैं। गुरुदेव ने इस ओर उसका ध्यान दिलाया तो उसने कहा—'महाराज ! रोटी तो मुझसे ज्यादा खायी ही नहीं जाती। मुश्किल से एक या दो रोटी खा पाता हूं। भूख ही नहीं लगती।' उसकी बात सुनकर आयुर्वेद का वह वाक्य याद आ गया—**'लाभादरुचिः अग्निमान्द्यं चं।'** अतिलोभ से अरुचि की बीमारी पैदा हो जाती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंतुलित संवेग

आयुर्वेद के आचार्यों ने इस विषय पर बहुत प्रकाश डाला है कि किस प्रकार के संवेग से कौन-सी बीमारी पैदा होती है। आधुनिक मेडिकल साइंस और साइकोलाजी में भी इस पर बहुत विचार किया गया है। इस विषय पर नयी-नयी खोजें हो रही हैं कि संवेग कितनी बीमारियां पैदा करते हैं। आज तो इसकी एक स्वतंत्र शाखा बन गयी है– 'साइकोसोमेटिक डिसीज– मनोकायिक बीमारियां। जितनी भी मनोकायिक बीमारियां हैं, वे सब मानसिक और भावात्मक परिस्थिति के कारण पैदा होती हैं।

रोग का सबसे बड़ा कारण है असंतुलित संवेग। स्वास्थ्य का पहला सूत्र है संवेगों को संतुलित करना, अनुशासित करना। हम इस संदर्भ में देखें–धर्म का पहला सूत्र क्या है ? आचार्यों ने बार-बार कहा– **'कषायमुक्तिः किलमुक्तिरेव'**–कषाय से मुक्ति ही मुक्ति है। क्रोध, मान, माया, लोभ, घृणा, ईर्ष्या-द्वेष, कामवासना–ये जितने संवेग हैं, इनसे मुक्त होने का नाम ही मुक्ति है। जो स्वास्थ्य का सूत्र है, वही धर्म का भी सूत्र है। जो धर्म का सूत्र है, वही स्वास्थ्य का भी सूत्र है। यदि आप स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से विचार करें तो आपको धर्म पर आना ही होगा और धर्म की दृष्टि से विचार करें तो स्वास्थ्य पर आना ही होगा। स्वास्थ्य और धर्म जिस बिन्दु पर आकर मिलते हैं, वह बिन्दु है संवेग।

चिकित्सा उपाधि की

ऐसा लगता है–आज के चिकित्साविज्ञानी और मनश्चिकित्सक भी कुछ भ्रान्ति में हैं। वे लोग मानसिक तनाव को ज्यादा महत्त्व देते हैं, मानसिक बीमारियों को ज्यादा महत्त्व देते हैं। यह बात सही नहीं है। बीमारी का मूल कारण जितना भावात्मक परिस्थितियां अथवा इमोशन्स हैं, उतना मानसिक या मेंटल प्राब्लम्स नहीं हैं। यह भावात्मक समस्या मानसिक समस्या से कहीं ज्यादा भयंकर है। वस्तुतः मानसिक समस्याएं भावात्मक समस्याओं से ही पैदा होती हैं। हमारे भाव जब मन पर उतरते हैं, मनोभाव बनते हैं, तब वे समस्याएं पैदा करते हैं। प्रेक्षाध्यान में इस

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बात को पकड़ा गया—सबसे पहले हम उपाधि की चिकित्सा करें, कषाय की चिकित्सा करें। अगर इनकी चिकित्सा होती है तो मानसिक चिकित्सा अपने आप हो जायेगी। बहुत सारे मनश्चिकित्सक हमारे पास आते हैं। वे भी परेशान हैं। एक मनश्चिकित्सक ने कहा—'महाराज ! हम मानसिक रोगी को कंपोज देते हैं, ट्रैंक्वेलाइजर्स देते हैं, शामक औषधियां देते हैं, किन्तु इनसे वह पूरी तरह ठीक नहीं होता। एक बार स्वास्थ्य थोड़ा उपलब्ध होता है, किन्तु बीमारी फिर से उभर कर सामने आ जाती है। क्या किया जाए ? मैंने कहा—'जिस मूल बात को पकड़ना चाहिए था, आपने उसे नहीं पकड़ा, दूसरे को पकड़ लिया। आप पकड़ें भावना को। अगर भावना के स्तर पर चिकित्सा होती है तो फिर कंपोज और ट्रेंक्वेलाइजर की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह बात प्रेक्षाध्यान के शिविरों में बहुत बार प्रमाणित हो चुकी है।

तुलसी अध्यात्म नीडम् में ध्यान का शिविर चल रहा था। बीकानेर का एक डॉक्टर शिविर में आया। उसने बताया—वह आल इंडिया मेडिकल इंस्टीट्यूट तथा बम्बई, बड़ौदा आदि के अनेक बड़े अस्पतालों में अपना इलाज करा चुका है, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। उस शिविर में उसने सात दिन तक प्रेक्षाध्यान का प्रयोग किया। आठवें दिन वह वहां से बिल्कुल स्वस्थ होकर गया। ऐसे एक नहीं, अनेक प्रयोग हुए हैं और हमने देखा है—जटिल से जटिल स्थिति भी सामान्य हुई है। जो महिला प्रतिदिन अनेक कंपोज की गोलियां खा जाती थी, प्रेक्षाध्यान के तीन दिन के प्रयोग से ही नींद की गोलियां और अन्य टेबलेट्स खाने की आदत छूट गयी। यह कोई जादू नहीं है बल्कि प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों का परिणाम है।

मादक द्रव्यों से बचें

स्वास्थ्य का दूसरा बिन्दु है—मादक द्रव्यों से बचना। आज बहुत सारी बीमारियां नशे की आदत के कारण हो रही हैं। हम लोग गुजर रहे थे सिविल लाइन्स से। एक हास्पिटल आया। पट्ट पर लिखा था—'तम्बाकू जिम्मेदार है फेफड़े की बीमारी के लिए। तम्बाकू जिम्मेदार है हार्ट अटैक के लिए। तम्बाकू जिम्मेदार है कैंसर के लिए। लोग जानते भी हैं कि तम्बाकू से कैंसर की बीमारी होती है, फेफड़ा खराब हो जाता है, हार्ट अटैक की संभावना बढ़ जाती है। शराब जिम्मेदार है लीवर को खराब करने के लिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदमी शराब पीये और लीवर खराब न हो, यह संभव ही नहीं है। लोग इसके दुष्परिणाम को जानते हैं, फिर भी नशा करते हैं। आज मादक द्रव्यों का सेवन इतना बढ़ता जा रहा है, इतनी तस्करी हो रही है मादक द्रव्यों की कि आने वाले समय की भयावहता का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। समाचार-पत्र में पढ़ा—ट्रक में ऊपर चार सौ पेटियां सेब की और उसके नीचे हशीश की पांच पेटियां। तस्करी का यह फलता-फूलता धंधा विश्वव्यापी बन गया है। इससे सबसे ज्यादा प्रभावित हो रही है आज की युवापीढ़ी। नशे की यह लत स्वास्थ्य को तो चौपट करती ही है साथ ही साथ व्यक्ति का चारित्रिक पतन भी करती है। जिसने नशे की लत पकड़ ली, उसमें शेष सब बुराइयां स्वतः आ जाएंगी।

समृद्ध विरासत

जो व्यक्ति अपनी समस्याओं के प्रति, अपने जीवन के प्रति जागरूक है, वह कभी नशे की ओर नहीं जा सकता। यह जागरूकता आज की अपेक्षा है। जैन समाज के सामने तो यह बहुत बड़ी अपेक्षा है। जो समाज अपनी कुछ विशेषताओं के कारण विकसित हुआ था, आगे बढ़ा था, उसे आज उन विशेषताओं को यथावत् रखना है। जैन समाज आज आर्थिक संपन्नता की दृष्टि से ही नहीं, किन्तु चारित्रिक दृष्टि से, खानपान की दृष्टि से भी अपनी एक अलग पहचान रखने वाला समाज है। अगर उस समाज में भी इस प्रकार की दुष्प्रवृत्तियां प्रवेश करती हैं तो यह चिंतनीय बात है। जैन समाज मांसाहारी नहीं, विशुद्ध शाकाहारी समाज है, व्यसनों से दूर रहने वाला समाज है। उसकी पहचान ही इस बात से है कि जैन मांस नहीं खाते, शराब नहीं पीते। आज के इस संक्रामक युग में जैन समाज और उसकी आने वाली पीढ़ी इन दुर्व्यसनों के प्रति जागरूक नहीं रहती है तो न केवल वह अपनी पहचान खोयेगी, अपितु अपनी अस्मिता भी खोयेगी। हर जाति को अपनी विरासत की चिंता होती है। जैनों की अपनी एक समृद्ध विरासत रही है और उसे हर स्थिति में सुरक्षित रखना है।

इन्द्रिय की उच्छृंखलता

स्वास्थ्य का तीसरा बिन्दु है—इन्द्रियों की उच्छृंखलता पर नियंत्रण। आज

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का युग इन्द्रियों की उच्छृंखलता का युग है। इन्द्रिय-संयम को आज पुराने जमाने की बात कहा जा रहा है। आज मुक्तता की सर्वत्र चर्चा हो रही है। देश मुक्त हो, इतना ही नहीं, हर व्यक्ति मुक्त हो, ऐसी बात कही जा रही है। मुक्त यौनाचार की भी हिमायत हो रही है। पश्चिमी देशों ने वैज्ञानिक प्रगति तो बहुत की है, किन्तु इन्द्रिय संयम की अवहेलना भी उसी अनुपात में की है। आज उसके परिणाम सामने आ रहे हैं। हिन्दुस्तान में उतनी भयंकर बीमारियां आज प्रचलित नहीं हो पायी हैं, जितनी पश्चिमी देशों में। अभी यहां उतना पागलपन नहीं है, जितना वहां है। जहां मुक्त यौनाचार होगा, इन्द्रियों की उच्छृंखलता होगी, इन्द्रियों के प्रति संयम बरतना पुराने जमाने की बात मानी जायेगी, वहां बीमारियों का तेजी से बढ़ना स्वाभाविक है और आज वैसा ही हो रहा है। एड्स जैसी बीमारी पश्चिमी देशों की ही देन है। सात-आठ वर्ष पहले कुछ गिनती के रोगी एड्स से ग्रस्त पाये गये थे हिन्दुस्तान में। आज इस देश में भी एड्स से संक्रमित रोगियों की संख्या हजारों-लाखों में है।

केवल भोग का ही नहीं, हर चीज का संयम होना चाहिए। आंख का संयम बहुत आवश्यक है। किन्तु समाज इसके प्रति भी जागरूक नहीं है। एक टी॰ वी॰ का ही उदाहरण लें। बच्चे प्रारंभ से ही टी॰ वी॰ के प्रति आकर्षित हो जाते हैं। यह आंख का आकर्षण है। परिणाम यह आता है—जो बच्चा प्रारंभ से ही टी॰ वी॰ का शौकीन है, उसकी सबसे पहले शिक्षा के प्रति गंभीरता समाप्त हो जायेगी, दायित्वबोध कम हो जायेगा। टी॰ वी॰ सामने है तो सारे दायित्व उसके सामने गौण हो जाएंगे। स्कूल का होमवर्क पूरा करने का तो प्रश्न ही नहीं है।

साक्षी है इतिहास

यदि इन्द्रिय की उच्छृंखलता इसी प्रकार बढ़ती रही तो निश्चय ही एक दिन वह स्थिति बनेगी—शासक या राजा तो महल में बैठा भोग में लीन है और शत्रु आक्रमण कर उसके राज्य को हड़पते चले जा रहे हैं। ऐसा हिन्दुस्तान के इतिहास में हुआ है। राजा महल में बैठा रंगरेलियां करता रहा और दुश्मन ने सत्ता हथिया ली। राजा को बन्दी बनाकर अपने साथ ले गये। ऐसे विलासी और व्यसनी शासक हिन्दुस्तान में हुए हैं। यह दायित्वहीनता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

की बात इन्द्रियों की उच्छृंखलता से आती है। हमारा अपनी इन्द्रियों पर संयम नहीं होता है तो दायित्वबोध कभी हो ही नहीं सकता। मैं मानता हूं—आकर्षण सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक और अवश्यंभावी बात हो सकती है। मनोरंजन जरूरी हो सकता है आदमी के लिए, किन्तु इसकी कोई सीमा तो होनी चाहिए। दिन भर वीडियो और सिनेमा ही देखेंगे तो अन्य काय, जो कहीं ज्यादा आवश्यक हैं, कब करेंगे ? यह इन्द्रिय का प्रबल असंयम व्यक्ति और समाज—दोनों के स्वास्थ्य के लिए बहुत खतरनाक है। इन्द्रियों की उच्छृंखलता को समाप्त किये बिना स्वास्थ्य की कल्पना नहीं की जा सकती।

आहार

स्वास्थ्य का चौथा पहलू है—आहार। पुराने जमाने में कहावत थी—'जैसा खावे अन्न, वैसा होवे मन। आज इसकी बड़ी वैज्ञानिक व्याख्याएं हुई हैं। व्यक्ति जैसा आहार करता है, वैसा ही उसके मस्तिष्क में न्यूरोट्रांसमीटर बनता है और जैसा न्यूरोट्रांसमीटर बनता है, वैसा ही उसका व्यवहार और आचरण होता है। इतना ज्ञान विकसित होने के बावजूद आहार के विषय में हमारी कोई जानकारी नहीं है। न रोटी बनाने वाले को आहार के विषय में कोई जानकारी है और न उसे खाने वाले को आहार के विषय में कोई जानकारी है। ऐसा मान रखा है कि भूख का काम है लगना और आदमी का काम है भूख लगने पर पेट को भर डालना। इससे ज्यादा भोजन के विषय में सोचने की जरूरत नहीं है। यही अस्वास्थ्य का हेतु बनता है।

अज्ञान शिक्षाधिकारी का

स्वास्थ्य के लिए आहार की विशुद्धता पर चिंतन जरूरी है। ज्यादा चीनी खाना, ज्यादा नमक खाना, ज्यादा चटपटी चीजें खाना, ऊटपटांग चीजें खाना और ज्यादा द्रव्य खाना, बहुत सारी चीजें एक साथ खाना—ये सब बीमारी के लिए जिम्मेदार हैं। भगवान् महावीर ने कहा—'ऊनोदरी करो, रसों का परित्याग करो।' राजस्थान के एक शिक्षाधिकारी ने बताया—'जब मैं नाश्ता करता हूं, खाने-पीने का कोई विचार नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता। बहुत सारी चीजें एक साथ खा लेता हूं, मैं उसकी बात सुनकर हैरान हो गया। इतना पढ़ा-लिखा और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति, विज्ञान का प्रोफेसर ऐसी बात कर रहा है, बिल्कुल बच्चों जैसी। मैंने कहा—'दूध और अचार तो सर्वथा विरुद्ध आहार हैं, इन्हें एक साथ खाते हो ?' उसने कहा—'हां, मैं तो इन्हें एक साथ लेता हूं।' मैंने सोचा—विज्ञान के बारे में जानने वाला, परमाणु की संरचना के बारे में जानने वाला अपने बारे में कुछ नहीं जानता कि क्या खाना चाहिए और क्या नहीं खाना चाहिए। यह बड़ी विचित्र बात है।

आहार के अविवेक से शरीर, मन और भावना—तीनों समान रूप से प्रभावित होते हैं।

श्रम

स्वास्थ्य का पांचवां बिन्दु है—श्रम। जो व्यक्ति उचित श्रम नहीं करता, वह कभी स्वस्थ नहीं रह सकता। श्रम न करना आज बड़प्पन की निशानी मान ली गयी है। बड़ा आदमी श्रम क्या करेगा ? क्यों करेगा ? झाड़ू लगाना, पानी भरना—ये सब तो छोटे आदमियों के काम हैं। बड़ा आदमी कभी परिस्थितिवश झाड़ू लगायेगा तो भी छिपकर लगायेगा। वह सोचेगा कि किसी ने झाड़ू लगाते देख लिया तो पोजीशन खराब हो जायेगी। ऐसी सोच इसलिए बनी कि श्रम को बहुत हल्का, छोटा और निकृष्ट काम मान लिया गया। एक समय था, महिलाएं अपने घर में ही स्वयं आटा पीसा करती थीं, कुएं से पानी भर कर लाती थीं, घर की पूरी सफाई करती थीं। उन्हें इस काम में बहुत श्रम करना पड़ता था किन्तु इसका परिणाम यह होता कि घर में कभी डॉक्टर बुलाने की जरूरत नहीं पड़ती । वह सब कुछ छूट गया। इसका परिणाम यह है कि आज हर परिवार का अपना एक फैमिली डॉक्टर है। हर महीने एक निश्चित रकम दवा और डॉक्टर के हवाले हो रही है।

आसन, व्यायाम और प्राणायाम

हमारी प्रत्येक कोशिका को रक्त की जरूरत होती है और रक्त श्रम के बिना पहुंचता नहीं। क्या आप कभी आसन करते हैं ? व्यायाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं ? प्राणायाम करते हैं ? नहीं, शायद आप इसे जरूरी नहीं मानते। आसन और व्यायाम के बिना शरीर को उचित मात्रा में रक्त उपलब्ध नहीं होता। हर अवयव तक रक्त नहीं पहुंच पाता। आसन, व्यायाम और प्राणायाम—ये तीनों शरीर को स्वस्थ रखने की अनिवार्य अपेक्षाएं हैं। पूज्य गुरुदेवश्री तुलसी बयांसी वर्ष की अवस्था में हैं, फिर भी प्रतिदिन आसन करते हैं। इसीलिए आप प्रातः चार बजे से रात दस बजे तक अनवरत श्रम करते हैं। श्रम और व्यायाम—ये शरीर में नयी ताजगी भरते हैं।

दिनचर्या

स्वास्थ्य के लिए यह अपेक्षित है कि अपनी दिनचर्या को नियमित बनाकर श्रम को उसमें पर्याप्त स्थान दें। यदि सवेरे देर से उठेंगे तो हर काम में जल्दी होगी। अनियमित दिनचर्या का अर्थ है स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही।

आदमी बहुत साधन जुटाता है सुख के लिए, किन्तु सुख मिलता नहीं। एक सूत्र दिया गया—'धन होता है आदमी के लिए।' किन्तु आज की जीवनशैली के संदर्भ में यह सूत्र भी उलट गया है। आज का सूत्र है—'आदमी होता है धन के लिए।' यह आज की स्थिति है। इसी का नाम मूर्च्छा है। प्रामाणिक प्रवर श्री सुमेरमलजी दूगड़ एक मार्मिक बात कहा करते थे—'आदमी शान्ति की इच्छा करता है, किन्तु इच्छा की शान्ति करना नहीं जानता। जब तक इच्छा की शान्ति नहीं होती है, तब तक शान्ति की इच्छा बिल्कुल अर्थहीन बन जाती है।'

जो स्वास्थ्य के प्रति जागरूक होगा, उसे धर्म के प्रति जागरूक होना ही होगा। स्वास्थ्य के लिए घूमना, व्यायाम करना, आसन करना आदि बहुत जरूरी है। इसमें दिन भर में एक घंटा का समय लगाना बहुत जरूरी है। जिन लोगों ने इसके महत्त्व को समझा है, वे आर्थिक दृष्टि से भी सफल हुए हैं। जापान में इसके प्रति बहुत जागरूकता है कि कैसे स्वास्थ्य को ठीक रखा जाए। इस जागरूकता ने आर्थिक दृष्टि से भी वहां जागरूकता पैदा की है। जो भी चिंतनशील और विचारशील

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्ति हैं, वे इस बारे में गहराई से चिंतन करें, अपनी दिनचर्या को व्यवस्थित करें और समाज में ऐसी परंपरा डालें, जो अनुकरणीय हो। स्वास्थ्य की समस्या का समाधान जीवनशैली के परिवर्तन में सन्निहित है। इस सचाई को समझने वाले की जीवनशैली के केन्द्र में स्वास्थ्य का दृष्टिकोण निश्चित होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूरदर्शन और अन्तर्दर्शन

संस्कृत साहित्य में काव्यों अथवा नाटकों के दो भाग किये गये हैं। एक है—श्रव्यकाव्य और दूसरा है दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य केवल सुनने का काव्य होता है। नाटक, अभिनय आदि दृश्यकाव्य की कोटि में आते हैं। नाटक के प्रति प्राचीनकाल से ही आकर्षण रहा है। समय-समय पर विभिन्न नाटकों की रचनाएं हुईं और नाटक खेले भी गये। दृश्यकाव्य विकसित होते-होते आज टी॰ वी॰ तक पहुंच गया है।

अनिवार्यता टी॰ वी॰ की

आज सबसे बड़ा दृश्यकाव्य या नाटक बन गया है टेलीविजन। दूरदर्शन के प्रति काफी आकर्षण पैदा हुआ है। जो भी समर्थ परिवार हैं, उनमें टी॰ वी॰ एक अनिवार्यता हो गयी है। आज शायद ही कोई खाता-पीता परिवार हो, जिसके पास टी॰ वी॰ न हो। ऐसे लोग बहुत कम हैं, जिनका दिन-रात के मध्य दो-चार घंटे का समय उसमें न लगता हो। कुछ लोगों का मानना है कि इससे बहुत लाभ हुआ है, विकास हुआ है। कुछ लोग कहते हैं कि विकास के साथ-साथ टी॰ वी॰ अनेक समस्याओं का जनक भी बना है। बहुत सारी समस्याएं पैदा की हैं टेलीविजन ने। दो-तीन वर्ष पूर्व ब्रिटेन में इसके खिलाफ एक आन्दोलन जैसा चला। आन्दोलनकारी कह रहे थे—टी॰वी॰ को बन्द कर दिया जाए क्योंकि इससे बच्चों की पढ़ाई बहुत प्रभावित हुई है। उनके दायित्वबोध और कर्तव्यबोध का निरन्तर ह्रास होता जा रहा है। आज सारी स्थितियां बदल गयी हैं। दो-चार दिन के पहले की घटना है। एक मुनि गोचरी के लिए जा रहे थे। परिवार के बुजुर्ग ने कहा—'महाराज ! एक घंटा बाद आएं। अभी तो सब टी॰ वी॰ देख रहे हैं। भिक्षा देने वाला कोई मिलेगा ही नहीं।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बढ़ता आकर्षण

सारे कर्तव्यों में इतना अन्तर आया है, इतना आकर्षण पैदा हुआ है कि सब लोग एक धुन में लग जाते हैं। ऐसी घटनाएं भी हमने सुनी हैं, पढ़ी हैं कि घर के सारे लोग टी. वी. देखने बैठ गये और चोरों के लिए बहुत सुविधा हो गयी। रात को नहीं, दिन में ही चोरी करने की सुविधा हो गयी। पीछे से कुछ भी किया जा सकता है। टी. वी. पर आंखें ऐसी गड़ा दी जाती हैं कि आसपास का कुछ भी भान नहीं रहता। यह पता ही नहीं चलता कि आसपास कौन क्या कर रहा है ? कहीं क्रिकेट का मैच चल रहा है तो फिर कहना ही क्या ? छात्र खाना-पीना भी भूल जाते हैं। यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि टी. वी. ने दायित्वबोध और कर्तव्यबोध की भावना को कम किया है। भले ही आज इसका पता न चले, किन्तु आने वाली पीढ़ी निश्चय ही दायित्वबोध से शून्य बन जायेगी, उसका कर्तव्यबोध समाप्त हो जायेगा।

चश्में क्यों बिके ?

कुछ वर्ष पूर्व ब्रिटेन में बच्चों के चश्में बहुत बिके। सर्वे किया गया—इसका कारण क्या है ? एक ही वर्ष में आश्चर्यजनक रूप से इतने चश्में कैसे बिके ? सर्वे का निष्कर्ष यह आया—टी. वी. के कारण ऐसा हुआ है। टी. वी. को बहुत निकटता से देखा जाता है। आंखों को खराब करने का एक सफल प्रयोग है टी. वी.। आंखें खराब करनी है तो इससे बढ़िया और कोई उपाय नहीं है। निकट से टी. वी. देखने वाले नहीं जानते कि इससे उनकी आंखों पर, उनके स्वास्थ्य पर कितना बुरा असर पड़ रहा है। उसमें से निकलने वाली किरणें उसे देखने वालों तक ही नहीं, कमरे के आसपास तक फैल जाती हैं और स्वास्थ्य पर प्रभाव डालती हैं।

अतीत की ओर लौटें

कुछ बातें टेलीविजन के पक्ष में हैं तो कुछ प्रतिपक्ष में हैं। पक्ष और प्रतिपक्ष—दोनों हैं। प्रश्न है—क्या अतीत की ओर पुनः लौटना संभव है ? यह असंभव नहीं है। आदमी को एक दिन पीछे लौटना ही पड़ता है। क्या किसी ने सोचा था कि पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी के बीच की दीवार टूट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जायेगी ? जर्मनी फिर द्वितीय महायुद्ध से पूर्व की स्थिति में लौट आयेगा ? किन्तु ऐसा हुआ। जर्मनी को लौटना पड़ा। सत्तर वर्ष पुराना रूस का साम्यवाद लौट गया। आज यूरोप की सारी स्थितियां फिर से बदल रही हैं। कोई पचास वर्ष बाद लौट रहा है, कोई सत्तर वर्ष बाद। दुनिया में ऐसा परिवर्तन होता है, हो रहा है, जिससे सारी मान्यताएं ही ध्वस्त होती जा रही हैं। आज के वैज्ञानिक मानने लगे हैं कि काल केवल आगे ही नहीं आता, पीछे की ओर भी लौटता है। आज शायद काल का पुनरावर्तन हो रहा है। काल केवल भविष्य ही नहीं बनता, कभी-कभी अतीत भी बन जाता है। आज शायद अतीत की दिशा में काल जा रहा है। यहां तक कि जिसे हम प्रगति कहते हैं, वह प्रतिगति हुए बिना प्रगति नहीं बनती। आज जो प्रगति हो रही है, वह फिर अतीत की ओर मुड़ रही है। राजस्थान में चौधरानियां जो वेशभूषा पहनती थीं, कालान्तर में वह गायब-सी हो गयी। आज फिर से वह नये फैशन के रूप में लौट रही है। जो प्रगति होती है, वह प्रतिगति होकर फिर लौटती है। आज जो पुरानी बातें वापस आ रही हैं, उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है—एक दिन जरूर ऐसा आयेगा, जिस दिन यह टी. वी. के प्रति जो अंधाधुंध आकर्षण पैदा हुआ है, उससे विरक्ति भी पैदा होगी।

आकर्षण इन्द्रिय जगत् में

प्रश्न है दूरदर्शन का। इन्द्रिय जगत् में जाने वाला आदमी देखता रहा है और उसमें उलझता रहा है। दो जगत् हैं—एक है इन्द्रियों का जगत् और दूसरा है इन्द्रिय से परे का जगत्, अन्तर्दर्शन का जगत्। आदमी इन्द्रिय जगत् में जीता है, इन्द्रियों के साथ जीता है। हमारा जितना बाह्य जगत् के साथ संपर्क स्थापित होता है, वह इन्द्रियों के माध्यम से होता है। एक आदमी अंधा, बहरा और गूंगा है। उसके लिए दुनिया बहुत छोटी बन जाती है। वह न सुन सकता है, न देख सकता है और न बोल सकता है। इन्द्रियां न हों तो दुनिया ही क्या ? सारी बाहरी दुनिया इन्द्रियों के माध्यम से ही हमारे काम आती है। कहा जा सकता है—जहां इन्द्रियां नहीं, वहां कुछ भी नहीं। जहां इन्द्रियों का जगत् है, वहां दर्शन की बात आयेगी। दर्शन दो भागों में बंट गया। एक पर का दर्शन और दूसरा स्व का दर्शन। इन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जगत् में अपने आपको देखना कभी संभव नहीं। जब तक व्यक्ति इन्द्रिय चेतना के स्तर पर जीता रहेगा, तब तक अपने आपको देखने का प्रश्न ही नहीं उठेगा। बहुत बार इसीलिए विरोधाभास खड़ा हो जाता है कि आदमी इन्द्रिय जगत् की बात सोचता है।

पति ऑफिस से लौट कर घर आया, देखा—पत्नी खाट पर लेटी हुई है। उसने पूछा—'क्या हुआ ? खाना बना लिया कि नहीं ?' पत्नी बोली—'नहीं बनाया। सिरदर्द इतना तेज हो रहा है कि रसोई नहीं बना सकती।' पति बोला—'दर्द था तो डॉक्टर के पास चली जाती।' वह बोली—'अभी कैसे जा सकती हूं ? सरदर्द मिट जायेगा तो चली जाऊंगी।'

मृग-मरीचिका है दुनिया

बीमारी मिट गयी तो फिर डॉक्टर के पास जाने की जरूरत ही क्या है ? किन्तु आदमी केवल बाह्य जगत् की स्थितियों को देखता है। उसमें विपर्यास पैदा होता है, विसंगतियां पैदा होती हैं। यह विसंगति का चक्र बाहरी दुनिया में चलता है। यदि अन्तर्जगत् की बात आ जाये, इन्द्रियों से परे जाकर आदमी अपने आपको देखना शुरू करे तो उसे पता चलेगा—मैं जिस दुनिया को सच मान रहा था, यथार्थ मान रहा था, वास्तविक मान रहा था, वह एक भ्रम था, मृगमरीचिका जैसा था। गुरुदेव ने कच्छ की यात्रा की। वहां चलते समय हमने देखा—आगे सौ कदम दूर ऐसा दिखाई देता है कि सामने तालाब भरा है। आगे जाकर देखते हैं तो ऐसा कुछ भी नहीं मिलता। वह पानी के तालाब का आकर्षण आगे से आगे बढ़ता जाता है। प्यासा हिरण पानी के लिए तेज धूप या चांदनी रात में दौड़ लगाता रहता है, पानी की एक बूंद भी उसे नसीब नहीं होती।

बाहर से भीतर की ओर

आदमी का दृष्टिकोण जैसे ही बदलता है, सम्यक् दृष्टि मिलती है, वह अपने आपको देखना शुरू करता है, दूरदर्शन का आकर्षण समाप्त हो जाता है। उसे ऐसा लगता है, जिसे मैं सच मान कर चल रहा था, वह निरी प्रवंचना थी, धोखा था। सब कुछ असत्य ही असत्य, माया ही माया, मृषा ही मृषा। सारी दृष्टियां बदल जाती हैं उस समय। कठिनाई यह है कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्तर्दर्शन के लिए आंखों को बन्द करना होता है। योग की भाषा में इन्द्रियों का प्रत्याहार करना होता है। महावीर की भाषा में यह इन्द्रियप्रतिसंलीनता है। इन्द्रियों को बाहर से भीतर की ओर मोड़ कर, मन के सारे दरवाजों, खिड़कियों को बन्द करना होता है, बाहर से सारा संपर्क विच्छेद करना होता है। प्रेक्षाध्यान का एक प्रयोग है—'सर्वेन्द्रिय संयम मुद्रा'—कान बन्द, आंख बन्द, नाक बन्द, मुंह बन्द। दो मिनट के लिए भी जो इस मुद्रा में ध्यान कर लेता है, वह बाहरी जगत् से एकदम कट जाता है। केवल दो मिनट में वह दो घंटे के विश्राम जितनी ताजगी का अनुभव करता है।

वर्णान्ध बन गया है आदमी

जब-जब हमारा बाहरी जगत् के साथ संपर्क टूटता है, हम एक ऐसी दुनिया में चले जाते हैं, जिसका हमें कभी अनुभव नहीं हुआ है। हम केवल एक ही दुनिया का अनुभव करते-करते उस स्थिति में चले गये, जिसे वर्णान्धता की स्थिति कहा जाता है। बादशाहों के जमाने में किसी को दण्ड देना होता तो उसे कोड़े नहीं लगाए जाते थे। उसका एक ही तरीका था—अपराधी को उस कालकोठरी में बन्द कर दिया जाता, जो एक ही रंग की होती थी। एक ही रंग को देखते-देखते वह व्यक्ति एक दिन अंधा हो जाता। वैसी ही वर्णान्धता की स्थिति शायद आज पैदा हो गयी है। केवल बाहर की दुनिया को ही देखते-देखते आदमी वर्णान्ध बन गया है। अब उसे वास्तविकता दिखाई नहीं दे रही है। एक व्यक्ति चौबीस घंटे में कितने घंटे की नींद लेता है ? कोई छह घंटा सोता होगा। कोई आठ घंटा अथवा दस घंटे की नींद लेता होगा। ज्यादा से ज्यादा कोई बारह घण्टा सोता होगा। यदि चौबीस में से दस घण्टे निकाल दें तो चौदह घण्टे बचते हैं। इन चौदह घण्टों में खुली आंखों से आप किसे देखते हैं ? आंख का काम दूसरे को देखना है। अपने आपको देखना आंख का काम नहीं है। आंख से अपने शरीर को देख लेते हैं, कांच में अपना चेहरा देख लेते हैं। किन्तु यह भी दूसरे को देखना है, क्योंकि शरीर आखिर पराया ही तो है। दूसरे को देखते-देखते आदमी ऐसा बन गया है कि अपने से बड़े को देखेगा तो हीनभावना पैदा होगी। अपने से छोटे को देखेगा तो अहंकार की भावना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पैदा होगी। किसी को देखा तो राग जागेगा, किसी को देखा तो द्वेष जागेगा। किसी को देखा तो घृणा जागेगी, किसी को देखा तो वैमनस्य जागेगा। ये सारी वृत्तियां जागती रहेंगी। वह अपने को देख नहीं सकता, जान-पहचान नहीं सकता।

बाह्य दर्शन का परिणाम

जो आदमी अपना अन्तर्दर्शन नहीं करता, केवल दूरदर्शन में ही अटक जाता है, उलझ जाता है, अपने आपको नहीं निहारता, नहीं देखता, वह उस बुढ़िया की ही तरह भ्रम में पड़ जाता है और दर्पण में अपने प्रतिबिम्ब को देखकर यह उपालंभ दे देता है—'मूर्ख ! यदि स्त्री को ही लाना था तो बुढ़िया को क्यों लाया ?' जिन व्यक्तियों ने अपने आपको देखने का प्रयत्न नहीं किया, उनकी यही स्थिति बनती है। इससे अहंकार और ममकार—ये दो वृत्तियां पनप जाती हैं। लोग कहते हैं—वह सत्ता में आया तो आंखें ऊपर चढ़ गयीं। नीचे देखता ही नहीं। धन आ गया तो पांव धरती से ऊपर उठ गये। थोड़ा ज्यादा पढ़-लिख गया तो इतना अहंकार जाग गया कि अपने से आगे दूसरों को कुछ समझता ही नहीं।

यह स्वाभाविक बात है। बाहरी जगत् में यह प्रतिक्रिया हो तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? यह तो बाहर को देखने का परिणाम है।

तब मिटेगी पीलिया की बीमारी

बाहरी जगत् को देखने का एक परिणाम है अहंकार। मैं और मेरा—यह ममकार है। मेरा शरीर, मेरा घर, मेरा परिवार, मेरा धन—सब मेरा ही मेरा। अहं और मम—इन दो काराओं में आदमी बन्दी बन जाता है। सचमुच इन दो वृत्तियों ने हमारे दृष्टिकोण को मिथ्या बनाया है। जिसका दृष्टिकोण अहंकार और ममकार से भरा हुआ है, उसका दृष्टिकोण मिथ्या बन जायेगा। उसके ऐसा पीला चश्मा लगेगा, जिससे सारी सृष्टि पीली ही पीली दिखाई देगी। दूसरा कोई रंग दिखाई ही नहीं देगा। यह पीलिया की बीमारी तब तक नहीं मिट सकती, जब तक कि वह अन्तर्दर्शन की स्थिति में न चला जाये, अपने आपको देखने का प्रयत्न न करे। 'मैं कौन हूं ?' यह प्रेरणा न जागे। बहुत कम लोग सोचते हैं कि मैं कौन हूं। किसी से पूछा जाये—तुम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कौन हो, तो उत्तर यही होगा—'मैं सुराना हूं, दूगड़ हूं, सेठिया हूं, सकलेचा हूं, लूणावत हूं, पाली का प्रवासी हूं, मद्रास में रहने वाला हूं अथवा शिक्षक हूं, सरकारी-कर्मचारी हूं, व्यवसायी हूं। हमारा सारा का सारा परिचय बाहर से जुड़ा हुआ है। मैं आत्मा हूं, चेतन हूं—यह उत्तर तो हजार में से संभवतः एक का भी नहीं मिलेगा। यह स्वाभाविक भी है। क्योंकि कभी अपने को समझने का, जानने का प्रयत्न ही नहीं किया गया। क्या चौबीस घण्टे में आधा घण्टा या बीस मिनट भी आदमी आंख मूंद कर अपने भीतर झांक कर यह देखने का प्रयत्न करता है कि मैं कौन हूं ? औरों की बात छोड़ दें, आज के धार्मिक लोग भी क्या ऐसा करते हैं ? धार्मिकों में भी कोई वैष्णव है, कोई सनातनी है, कोई और कुछ है। सबके पीछे धर्म का कोई न कोई लेबल या उपाधि लगी हुई है। क्या वे कभी आत्मनिरीक्षण करते हैं ? पता नहीं कैसे कह दिया गया—कलिकाल में केवल नाम ही सहारा है। जिन लोगों ने इस सूत्र को पकड़ लिया, वे और कुछ करने की जरूरत ही नहीं समझते। वे सोचते हैं—नाम जपते रहो, मन चाहे सारे जहां का चक्कर लगाता रहे।

झलक भीतर की

वस्तुतः अपने आपको जानने और समझने का प्रयत्न बहुत कम होता है। बाहर को देखेंगे तो आंखें खुली रहेंगी। भीतर देखने का प्रयत्न करेंगे तो आंखें बन्द करनी होंगी। जिस व्यक्ति ने इन्द्रियों को बंद करना नहीं सीखा, वह कैसे धार्मिक हो सकता है ? यह समझने में भी कठिनाई होती है। इन्द्रियों का काम धर्म को समझना नहीं है। जीभ का काम है सुस्वादु भोजन का रसास्वादन करना। नुकसान कितना ही हो, स्वाद की चीज है तो भरपेट खाओ। छोटे बच्चों की बात जाने दें, वे भोले हैं, अनजान हैं। बड़े और बुजुर्ग लोग भी जीभ के स्वाद के लिए क्या-क्या नहीं खाते ? स्वास्थ्य का नियम है—शरीर के तापमान से ठंडी या गर्म चीज नहीं खानी चाहिए, पर खाने-पीने वाले लोग इस नियम का कहां तक पालन करते हैं ? चाय पीने वाले कुछ लोग इतनी गर्म चाय पीते हैं कि चाय के बर्तन को हाथ से नहीं उठा पाते हैं तो संड़ासी से पकड़ कर मुंह तक पहुंचाते हैं। बड़े-बड़े लोग ऐसा करते हैं। क्यों करते हैं ? इसलिए कि इन्द्रियों के जगत् में जीते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और इन्द्रियों का आकर्षण उनके प्रति है। जहां इतने सारे आकर्षण हों, वहां अपने आपको देखने की बात कहां से आयेगी? हमें यदि धर्म को समझना है और वास्तव में धर्म करना है तो सबसे पहले इन्द्रियों को बन्द करना सीखना होगा। आंखें बन्द, कान बन्द और मुंह बन्द—ये सब बन्द हो जाएंगे तो फिर नाटक या टी. वी. देखने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। नाटक देखने की जरूरत उन्हें पड़ती है, जो अन्तर्दर्शन में नहीं जाते। यदि आप केवल आधा घण्टा के लिए सारी इन्द्रियों को विश्राम देकर बिल्कुल स्थिर और एकाग्र होकर अपने भीतर झांकना शुरू कर दें और इसका नियमित अभ्यास करें तो एक दिन आपको कोई ऐसी झलक मिल जायेगी कि आप रोमांचित हो जाएंगे। आप देखेंगे—भीतर का जगत् कितना विशाल है, कितना आनंदमय और प्रकाशमय है। वहां कोई अंधकार नहीं है, कोई समस्या नहीं है। आपको एक दिव्य प्रकाश मिलेगा और उस अंतः आलोक में दूरदर्शन का आकर्षण फीका लगने लगेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जागरूकता और जीवन व्यवहार

दो आदमी लड़ रहे थे। एक का शरीर कमजोर था, एक का शरीर बहुत मजबूत था, वह कमजोर को पछाड़ रहा था। आखिर लड़ाई शान्त हो गई। जो कमजोर व्यक्ति था, उसके पास एक आदमी आया, नमस्कार किया। उसने कहा—'तुम मेरे साथ ही रहते हो, पहले कहां चले गए ?

'मैं तो यहीं खड़ा था।'

'क्या कर रहे थे ?

'लड़ाई देख रहा था। दो आदमी लड़ रहे थे।'

'दो कौन ? मैं ही तो था, जो एक मुनि हूं। मुझे तुमने पहचाना नहीं।'

'मुनिवर ! आदमी की पहचान तो उसके व्यवहार से होती है। मुनि कोई ऐसे लड़ते हैं ? मैंने सोचा—कोई दो लड़ाकू आदमी लड़ रहे हैं। मैं कैसे सोचूं कि यह मुनि लड़ रहा है।'

पहचान से व्यवहार

अपने भीतर कौन कैसा है, यह पता चलना तो बहुत कठिन बात है। किन्तु व्यवहार जैसा सामने आता है, उसके आधार पर व्यक्ति को पहचाना जाता है।

हमारी पहचान का सबसे बड़ा साधन बनता है व्यवहार। हम बाहर में कैसे प्रकट होते हैं ? हमारी अभिव्यक्ति क्या होती है ? हम दूसरे के प्रति, पदार्थ के प्रति, वस्तु के प्रति, व्यक्ति के प्रति कैसा व्यवहार करते हैं ? उस व्यवहार में हमारा पूरा व्यक्तित्व झलक जाता है।

एक आदमी बगीचे के भीतर चल रहा है और जगह-जगह गन्दगी फैलाता चल रहा है। फूलों को तोड़ रहा है। बिना मतलब पेड़-पौधे,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वनस्पति—सबको खराब कर रहा है। पता लग जाएगा कि भीतर में कैसा है ? एक व्यक्ति प्रातःकाल घूमता है, उसे जहां कहीं कुछ पड़ा दिखाई देता है, वह उसे उठाकर मुख्य मार्ग से दूर रख देता है। इससे पता चलता है कि व्यक्ति के भीतर में कैसी चेतना है।

मुख्य मार्ग पर एक कूड़ादानी रखी हुई है। केला खाएं तो छिलका उसमें डाल दें। कोई भी डालने की चीज हो तो उसे बाहर नहीं, उसी कूड़ादानी में डालना है। एक व्यक्ति इस नियम की कोई परवाह नहीं करता। चाहे पैर फिसल जाए, गिर जाए, किसी की हड्डी टूट जाए, कोई चिन्ता नहीं। गन्दगी हो तो भले हो जाए, इस व्यवहार से पता चलता है कि भीतर में कैसी जागरूकता है?

संवादिता भीतर और बाहर की

ध्यान का परिणाम है जागरूकता। छोटी से छोटी घटना के प्रति, छोटी से छोटी वस्तु के प्रति और छोटे से छोटे व्यक्ति के प्रति जागरूकता आ जाती है तो समझना चाहिए—ध्यान ने बहुत अच्छा काम किया है। यह जागरूकता न आए उतना ही प्रमाद बना रहे, जितना ध्यान करने से पहले था तो समझना चाहिए—दवा ली तो थी पर लगी नहीं, ध्यान किया तो था पर परिणाम नहीं आया।

ध्यान से अन्तरंग बदलना चाहिए, साथ-साथ इसका पूरक वाक्य होना चाहिए—ध्यान से व्यवहार भी बदलना चाहिए। ध्यान से भीतर में बदलेगा और बाहर से नहीं बदलेगा, यह बात सम्भव नहीं है। जो भीतर से बदलेगा, वह बाहर से भी बदलेगा। बदलाव दोनों दिशाओं में आएगा। बाहर से कोई बदलता है तो यह जरूरी नहीं है कि भीतर से भी बदल जाए। बाहर तो छलना हो सकती है। एक आदमी बाहर से बदल गया, बाहर बदलाव दिखाता है किन्तु हो सकता है कि भीतर प्रवंचना हो। जो भीतर में भी बदल जाएगा, उसके लिए यह निश्चित है कि वह बाहर में भी बदलेगा। भीतर और बाहर की संवादिता है, उसमें कोई विरोध नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चर्या शुद्धि

जब आदमी भीतर से बदलता है तब दो शुद्धियां घटित होती हैं—भाव शुद्धि और विचार शुद्धि। ये दोनों स्व तक सीमित हैं। ध्यान का तीसरा परिणाम है—चर्या शुद्धि। प्रातःकाल जागरण से लेकर और रात्रिकाल सोने तक उसकी चर्या शुद्ध हो जाएगी, नींद और जागरण की चर्या बदलेगी, चर्या की शुद्धि होगी। चर्या की शुद्धि में पहला तत्त्व है जागरण, जागने के बाद शारीरिक क्रिया करना। जहां शारीरिक क्रिया का प्रश्न है वहां स्वच्छता की बात आएगी। वह ऐसा कोई भी कार्य नहीं करेगा, जिससे गन्दगी बढ़े, अस्वच्छता बढ़े। यदि स्वच्छता की बात समझ में नहीं आती है तो धर्म की बात कैसे समझ में आएगी ? जिस व्यक्ति को स्वच्छता की बात समझ में नहीं आए—गन्दगी नहीं बढ़ाना है, प्रदूषण नहीं बढ़ाना है, वह आत्मा-परमात्मा, स्वर्ग-नरक, परलोक, पुनर्जन्म जैसे सूक्ष्म और गूढ़ तत्त्व कैसे समझ पाएगा ? जिसने छोटी बातों को नहीं समझा, वह बड़ी बात को कैसे समझ पाएगा ? बहुत लोग बड़ी-बड़ी सूक्ष्म बातें कर लेते हैं कि आत्मा कहां है ? परमात्मा कहां है ? ऐसा लगता है—ये कोरी रटी-रटाई बातें हैं। ये जिज्ञासाएं, ये प्रश्न सहज नहीं हैं। जो प्रश्न चेतना के विकास में से निकलता है, वह प्रश्न बहुत महत्त्वपूर्ण होता है किन्तु जो प्रश्न सुना-सुनाया, पढ़ा-पढ़ाया या रटा-रटाया होता है, उस प्रश्न का कोई बहुत मूल्य नहीं होता।

व्यवहार द्रष्टा का

ध्यान करने वाले व्यक्ति में चर्या शुद्धि की बात जागती है। वह अपनी ओर से वातावरण में गन्दगी पैदा नहीं करेगा। आज प्रदूषण का ज्वलंत प्रश्न है। एक धार्मिक आदमी, ध्यान की साधना करने वाला व्यक्ति इसके प्रति जागरूक रहेगा, वह सोचेगा—मेरे द्वारा प्रदूषण का बढ़ना हिंसा का बढ़ना है। ध्यान करने वाला व्यक्ति हिंसा को बढ़ावा देना नहीं चाहता। वह सारे दिन की चर्या—सोना, बैठना, उठना, बात करना आदि सब कुछ जागरूकता से करता है।

भगवान् महावीर के सामने प्रश्न आया—एक साधक धर्म की आराधना करता है और एक धर्म की आराधना नहीं करता है, दोनों में क्या भेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रेखा है ? हम कैसे पहचान सकते हैं कि यह ध्यानी है, धार्मिक है और यह धार्मिक नहीं है ? भगवान् ने बहुत थोड़े में उत्तर दिया—**अन्नहा णं पासह परिहरेज्जा**—जो पश्यक् है, द्रष्टा है, जिसने सचाइयों को जानना, देखना शुरू कर दिया है, उसका सारा व्यवहार अन्यथा होगा। वह आम आदमी की तरह नहीं चलेगा। वह बोलेगा, खाएगा तो देखने वाले को पता लग जाएगा कि कितनी जागरूकता से काम कर रहा है, कितनी जागरूकता से चल रहा है।

रुकते क्यों हैं ?

पिलानी की घटना है। पूज्य गुरुदेव चल रहे थे, साथ में जुगलकिशोर बिड़ला भी चल रहे थे। बिड़लाजी चलते-चलते बात करते जा रहे थे। जब गुरुदेव को उनकी बात का उत्तर देना होता, गुरुदेव रुक जाते। दो-चार बार ऐसा हुआ। बिड़लाजी ने पूछा—'महाराज ! क्या आपके पैर में दर्द है ? आप चलते-चलते रुक क्यों जाते हैं ?' गुरुदेव बोले—'बिड़लाजी ! दर्द नहीं है। यह हमारी जागरूकता है, गमनयोग है। जब बोलना पड़े तो ठहर जाएं, न बोलना पड़े तो चलते जाएं।'

चलना और बोलना—दोनों साथ में नहीं हो सकते। जब बोलना है तो ठहर जाना है और जब नहीं बोलना है तो चलते जाना है। एक गृहस्थ चलते हुए बात करता है किन्तु एक साधक चलते हुए बात नहीं करता। उसका व्यवहार भिन्न हो जाएगा, बदल जाएगा, उसके बोलने और सोचने में भी जागरूकता आ जाएगी।

संन्यासी का आशीर्वाद

राजा के घर एक संन्यासी आया। वह कुछ दिन रुककर जाने लगा। राजा बोला—महाराज ! जाते-जाते आप कोई आशीर्वाद दीजिए। संन्यासी ने आशीर्वाद दिया—'एक बात का अभ्यास करना, क्रोध आए, उस समय कोई काम मत करना। यह मेरा आशीर्वाद है।' संन्यासी चला गया। राजा ने उस बात को पकड़ लिया। समय बीत गया। राजा बड़ा जागरूक है उस आशीर्वाद के प्रति। राजा के कोई पुत्र नहीं था। समस्या थी राजगद्दी किसे सौंपे ? आखिर चिन्तन करते-करते निर्णय लिया—कन्या को राजगद्दी सौंप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूंगा। जब उसका विवाह होगा, तब उसका पति ही राजा बन जाएगा। निर्णय ले लिया—कन्या को राजगद्दी पर बैठाना है। कन्या ने पुरुष वेष में रहना शुरू कर दिया। प्राचीन काल में रानियां भी पुरुष वेष में रहती थीं, राज्य कार्य भी चलाती थीं। एक दिन राजा कहीं बाहर गया हुआ था, अकस्मात् महल में आ पहुंचा। उसने देखा—महारानी एक पुरुष का आलिंगन किये हुए लेटी है। देखते ही राजा तिलमिला उठा। तत्काल तलवार हाथ में निकाल ली। उसी समय मुनि का आशीर्वाद याद आया—क्रोध में कोई काम मत करना। तलवार म्यान में चली गई। राजा आगे बढ़ा, पर्यंक के निकट आया। राजा यह देख अवाक् रह गया—पुरुष वेशधारी बेटी और मां निद्रा में लीन हैं। राजा का व्यवहार बदल गया। उसका क्रोध शान्त हो गया। यदि वह क्रोध में काम कर लेता तो अनर्थ हो जाता।

जो आदमी जागरूक हो जाता है, उसका व्यवहार बदलता है चाहे कितनी ही बड़ी घटना सामने आए। ऐसा लगे—कोई पहाड़ टूट रहा है, अन्याय हो रहा है तो भी तत्काल वह कोई कार्य नहीं करेगा। वह बड़े धैर्य के साथ कार्य करेगा। यदि इस प्रकार का व्यवहार हो जाए तो परिवार में होने वाले सारे झगड़े समाप्त हो जाएं। व्यक्ति ने कुछ देखा, पूरा समझा नहीं और कोई कदम उठा लिया। ऐसा करने के बाद उसे यह भी कहना पड़ता है—मैंने जल्दबाजी में अमुक काम कर लिया। न जाने कितने लोग ऐसे हैं, जो कहते हैं—'भई ! भूल हो गई, जल्दबाजी में ऐसा हो गया।' जागरूक व्यक्ति ऐसा कभी नहीं करता। उसका व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है।

आहार-शुद्धि

व्यवहार की एक कसौटी है—आहार-शुद्धि। एक जागरूक व्यक्ति के खान-पान में सहज सभ्यता आ जाएगी। आजकल भोज के अनेक तरीके प्रचलित हैं। एक विधि है—सब प्रकार के खाद्य-पदार्थ टेबल पर सजे हुए हैं, जो चाहो, उठा लो, खा लो। जो जागरूक नहीं होता है, वह किसी बढ़िया चीज को देखता है और उसी पर अटक जाता है।

एक भाई से सहज ही मैंने पूछ लिया—'तुम आज भोज में गए थे ?

'हां, महाराज ! गया था।'

'ज्यादा तो नहीं खाया ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'नहीं, बिल्कुल नहीं खाया। आप लोग कहते हैं कि ज्यादा द्रव्य नहीं खाने चाहिए। मैंने तो केवल एक ही द्रव्य खाया।'

'कौन-सा द्रव्य खाया ?'

'महाराज ! बादाम की कतली के सिवाय किसी द्रव्य को छुआ ही नहीं।'

ध्यान और व्यवहार

जहां सामान्य सभ्यता की बात यह है—एक-दो पीस ले लेना चाहिए वहां उसने दो सौ बादाम की कतली खा ली, अन्य किसी द्रव्य का स्पर्श ही नहीं किया। साधक का व्यवहार ऐसा नहीं हो सकता। वह संयम का मूल्य जानता है। उसमें यह मर्यादा और विवेक है—कब, कितना, कैसे करना चाहिए ? इन्द्रियों की लोलुपता और आकर्षण उसके आड़े नहीं आएंगे। यह आहार-शुद्धि चर्या की शुद्धि है। मैं यह मानता हूं—ध्यान करने वाला व्यक्ति पहले नम्बर का सभ्य होगा, शिष्ट और व्यवहारकुशल होगा। अगर वह ऐसा नहीं होता है, तो मान लेना चाहिए—ध्यान हुआ नहीं है। जब हमारे भीतर के भाव बदलते हैं तब बाहर का व्यवहार भी बदलना चाहिए। यदि ध्यान और व्यवहार अलग-अलग हो जाए, दोनों में कोई ताल-मेल ही नहीं रहे तो एक साधक की भी आज के धार्मिक जैसी स्थिति हो जाए। आज के तथाकथित धार्मिक के व्यवहार को देखकर कोई नहीं कह सकता कि यह धार्मिक व्यक्ति है। यदि ध्यान करने वाला न बदले तो वह ध्यानी भी तथाकथित धार्मिक जैसा बन जाएगा। ऐसा नहीं होना चाहिए।

क्रूर व्यवहार न करे

ध्यान के साथ व्यवहार में परिवर्तन जरूरी है। एक व्यक्ति ध्यान करता है और अर्थ की शुद्धि के प्रति जागरूक नहीं है तो मानना चाहिए—ध्यान का व्यवहार में अवतरण नहीं हुआ। आर्थिक शुद्धि की पहली मर्यादा है—व्यक्ति किसी के प्रति क्रूर व्यवहार न करे। एक साधक अर्जन की शुद्धि के प्रति जागरूक होगा। अर्जन में क्रूरता और कठोरता नहीं होगी। मालिक का मजदूर के प्रति कठोर और क्रूर व्यवहार नहीं होगा। अपने कर्मचारी के प्रति भी करुणा पूर्ण व्यवहार न हो तो प्रतिक्रिया हो सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक अमीर व्यक्ति को दिल का दौरा पड़ा। मजदूरों में बात पहुंची—आज मालिक को दिल का दौरा पड़ गया। एक मजदूर ने कहा—अरे ! झूठी बात तो नहीं है ? दूसरे ने कहा—'नहीं, बिल्कुल सच्ची बात है। मैं अभी वहीं से आ रहा हूं। उनके परिवार के सब लोग चिन्तातुर बने हुए हैं। डॉक्टर भी कह रहा था—हार्ट-अटैक हुआ है।

पहले व्यक्ति ने दूसरे के कथन का उपहास करते हुए कहा—'अरे ! भाई ! उसके दिल तो था ही नहीं। दिल का दौरा कहां से पड़ गया ? दिल होता तो दौरा पड़ने की बात समझ में आती।'

जो क्रूर व्यवहार करता है, दिल ही नहीं रखता, उसके दौरे की बात कहां से आएगी ? क्रूर व्यवहार या क्रूरता का जो प्रसंग है, वह धार्मिक या ध्यान करने वाले आदमी में हो नहीं सकता। उसके मन में प्राणी मात्र के प्रति करुणा जागनी चाहिए। कम से कम मनुष्य के प्रति तो करुणा जागे ही। पहले मनुष्य के प्रति जागेगी और विकास होते-होते प्राणी मात्र के प्रति करुणा जाग जाएगी।

करुणा का विकास

आर्थिक शुद्धि का पहला लक्षण है—करुणा का विकास। एक साधक किसी के प्रति क्रूर व्यवहार नहीं कर सकता। क्या इस स्थिति में मिलावट की बात सोची जा सकती है ? वह खाद्य वस्तु में मिलावट की बात कैसे सोच सकता है ? वह धोखाधड़ी कैसे कर सकता है ? वह किसी के प्रति अन्याय कैसे कर सकता है ? किसी का गला कैसे घोंट सकता है ? वह अपनी लेखनी को छुरी कैसे बना सकता है ? यह कलम है, छुरी नहीं—सेठ के इस कथन पर किसान यदि यह टिप्पणी करता है—'हमारे गले तो इसी से कटते हैं, तो मानना चाहिए—करुणा व्यवहार में घटित नहीं हुई है।

आर्थिक शुद्धि होने पर कलम किसी के लिए छुरी नहीं बन सकती, व्यक्ति किसी का शोषण नहीं कर सकता।

सहयोग और सहानुभूति का भाव

जो ध्यानी होता है, उसमें सहयोग और सहानुभूति की भावना जागती है। वह केवल अपने स्वार्थ के लिए नहीं जीता। किन्तु जो असमर्थ हैं, पिछड़े

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हुए हैं, उनके प्रति सहयोग और सहानुभूति की भावना जाग जाती है। वह अकेला ही नहीं खाना चाहता। उसमें एक तादात्म्य की-सी बात आने लग जाती है। दूसरे का कष्ट देखना उसके लिए सह्य नहीं होता।

एक ध्यानी व्यक्ति अपनी सुविधा के लिए अधिक संग्रह नहीं कर सकता। वह भोग और उपभोग की सीमा करता है—'मैं अपने जीवन में इतने से ज्यादा अर्थ का प्रयोग नहीं करूंगा। इतने से ज्यादा पदार्थों का प्रयोग नहीं करूंगा। व्यक्तिगत जीवन को संयत रखूंगा।' आजकल कुछ स्थितियां देखते हैं, सुनते हैं कि लोग बुरे साधनों से धन कमाते हैं, फिर अपनी सुख-सुविधा, बड़प्पन और साज-सज्जा के लिए बीस-तीस लाख रुपये तक खर्च कर देते हैं।

अर्थहीन मनोवृत्ति

एक भाई ने कहा—अभी मैंने कमरों और हॉल को फर्निस्ड किया है, खूब सजाया है और उस सजावट में मेरे पचास लाख रुपये खर्चे हो गए। तत्काल मेरे मन में एक विचार आया—एक आदमी साज-सज्जा और बड़प्पन के लिए पचास लाख रुपये लगा देता है, जिनका कोई उपयोग नहीं है, प्रतिलाभ नहीं है। व्यापार या उद्योग में लगाता है तो सोचा जा सकता है कि कोई प्रतिलाभ मिलेगा। साज-सज्जा केवल इसलिए है कि लोग उसे देखकर कहेंगे—मकान कितना बढ़िया सजाया हुआ है। इसके सिवाय कोई लाभ नहीं है किन्तु इस प्रकार की मनोवृत्ति चल पड़ी है। कई बार हम लोगों के साथ भी ऐसा होता है। श्रद्धालुजन हम लोगों को भी अपने घर पर आने का आग्रह करते हुए कहते हैं—'हमारे घर को पवित्र करें। किन्तु उसके साथ वे यह दिखाना चाहते हैं कि हमारा घर इतना सजा हुआ है।' यह प्रदर्शन की जो मनोवृत्ति है, बिल्कुल अर्थहीन है। इससे सामाजिक विकास में एक अवरोध पैदा हो गया।

प्रश्न है उपयोगिता का

जो व्यक्ति ध्यान करने वाला है, उसमें यह बोध जागना चाहिए—क्या उपयोगी है और क्या अनुपयोगी है ? धन का व्यय होना एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। हम लोग इसमें विश्वास नहीं करते कि धन से धर्म होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यह हमारा सिद्धान्त ही नहीं है। प्रश्न है—उपयोगिता और दुरुपयोगिता का। धन का जो खर्च होता है, वह उपयोगी काम में होता है अथवा दुरुपयोग में होता है। साज-सज्जा, सजावट—यह सारा दुरुपयोग है। एक बड़ा भोज किया, दस हजार आदमियों को भोज करा दिया। लगता नहीं कि उसका कोई उपयोग है। उपयोग वह है, जो समाज के लिए काम आए। जैसे चिकित्सा और शिक्षा के क्षेत्र में धन व्यय होता है तो व्यक्ति को लगता है कि यह उपयोगिता का काम है।

दुरुपयोग का निदर्शन

एक व्यक्ति ने कहा—मैंने अपनी लड़की को पचास लाख का दहेज दिया। एक धनाढ्य ने कहा—मैंने अपनी लड़की को एक करोड़ का दहेज दिया। इस पचास लाख और एक करोड़ के दहेज ने पूरे समाज को समस्या में डाल दिया। दूसरा व्यक्ति सोचता है—करोड़ या पचास लाख रुपये देने जितनी मेरी हैसियत नहीं है तो कम से कम पच्चीस लाख का दहेज तो मैं भी दूं। तीसरा सोचता है—कम से कम पांच लाख का तो मैं भी दूं। अगर इतना दहेज नहीं मिलता है तो जो ससुराल वाले हैं, उनके मन में आता है—उसने तो इतना दहेज दिया और इन्होंने तो कुछ दिया ही नहीं। वे बेचारी लड़की को ताने देते हैं, सताते हैं, दो पाटों के बीच में वह निर्दोष लड़की पीसी जाती है या जलाई जाती है अथवा वह स्वयं आत्महत्या कर लेती है। यह अर्थ के दुरुपयोग का चक्र है। इसने समाज को बहुत जर्जर बना डाला है। ऐसे समाज को धार्मिक कैसे कहें ? धार्मिक समाज का तो यह लक्षण ही नहीं है। आज यह नहीं कहा जा सकता कि हिन्दुस्तान का समाज बहुत धार्मिक समाज है, उच्च कोटि का समाज है। अनेक विद्वान् पूछते हैं—'हिन्दुस्तान बड़ा आध्यात्मिक और धार्मिक देश है' मैं उत्तर देता हूं—यह कभी रहा होगा। हम इतिहास की बात भले करें, वर्तमान में ऐसा नहीं लगता। यह तो हो सकता है कि हिन्दुस्तान के पास आज भी धर्म की विरासत है किन्तु व्यवहार में धर्म है, यह कहना कठिन है।

ध्यान करने वाले व्यक्ति में आर्थिक शुद्धि का विकास अवश्य होना चाहिए। हमारे पुराने आचार्यों ने एक परिभाषा बना दी—**अर्थशुचिः शुचि**—जो अर्थ में पवित्र है, वह आदमी पवित्र है। जो अर्थ में पवित्र नहीं है, घोटाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करता है, वह बिल्कुल अपवित्र है, दिल से काला है। हमारे दिल की पहचान आर्थिक शुद्धि से होती है और आर्थिक शुद्धि हमारे भावों की शुद्धि का हेतु बनती है।

संबंध शुद्धि

तीसरी बात है—सम्बन्धों की शुद्धि। समाज में जितने सम्बन्ध हैं, वे बिल्कुल स्वस्थ बनें, यह अपेक्षित है। समाज का मतलब क्या है ? सम्बन्धों का नाम ही समाज है। पिता, पुत्र, भाई-भाई, मालिक-कर्मचारी—ये जो सम्बन्ध हैं, इन सम्बन्धों की व्याख्या ही तो समाज है। वैसे हर आदमी अलग-अलग है, किन्तु सब परस्पर सम्बन्धों से जुड़ गए और एक समाज बन गया। समाज का एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है, जिसको हम विसम्बन्ध कह सकें ? सम्बन्ध मुक्त कोई नहीं है, सब सम्बन्धों से जुड़े हुए हैं। जो हजार कोस की दूरी पर बैठे हैं, पांच हजार किलोमीटर की दूरी पर बैठे हैं, वे भी सम्बन्धों से जुड़े हुए हैं। पिता हिन्दुस्तान में बैठा है, लड़का कनाडा, अमेरिका या रूस में बैठा है। क्षेत्रीय दूरी बहुत है पर बीच में सम्बन्ध का सूत्र जुड़ा हुआ है। पुत्र मानता है—मेरा पिता वहां है और पिता मानता है—मेरा पुत्र वहां है। दोनों के बीच स्नेह के सम्बन्ध का धागा जुड़ा हुआ है, वह टूटता नहीं है। सम्बन्धों की यह एक व्यूह रचना है और इसका नाम है समाज। सम्बन्धों की शुद्धि ध्यान का सहज प्रतिफल है।

स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ

आज सम्बन्धों की बड़ी समस्या है। सम्बन्ध शुद्ध नहीं रहे। इसका कारण है—स्वार्थ और भेदनीति। ये सम्बन्धों को बिगाड़ देते हैं। दो भाई हैं। एक-दूसरे का स्वार्थ अलग-अलग है। मैंने सैकड़ों परिवारों में देखा है—एक भाई ज्यादा काम करता है, दूसरा कम करता है। एक को काम मिला, दूसरे को नहीं मिला। जिसके कमाई ज्यादा है वह अलग से अपना घर बसा लेता है। कुछ वर्षों के बाद इतना तनाव होता है कि घर में ही अलग चूल्हे नहीं जलते, दिमाग में भी अलग चूल्हे जलने लग जाते हैं। भाई-भाई में परस्पर इतना वैमनस्य होता है कि दुश्मनों के भी उतना नहीं होता। वे एक-दूसरे को सहन नहीं कर सकते। थोड़ी-सी बात होती है और टकराव हो जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, सम्बन्ध बिगड़ जाते हैं।

ध्यान करने वाले व्यक्ति में स्वार्थ की भावना प्रबल नहीं बन पाएगी। उसमें स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ—तीनों संतुलित हो जाते हैं। उसमें यह विवेक होता है कि इतना स्वार्थ साधना है, इतना परार्थ साधना है—दूसरे के लिए कुछ करना है और इतना परमार्थ करना है। स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ तीनों का संतुलन रहेगा तो सामाजिक सम्बन्ध कभी बिगड़ नहीं पाएंगे। सम्बन्ध तब बिगड़ते हैं, जब परार्थ और परमार्थ की भावना बिल्कुल सो जाती है। जब केवल स्वार्थ की भावना जागृत होती है तब सम्बन्धों में बिखराव आ जाता है। आज ऐसा लगता है—स्वार्थ भावना को अतिरिक्त महत्त्व दे दिया गया इसीलिए अनैतिकता और अप्रामाणिकता बढ़ी है।

दूध पतला क्यों हुआ ?

घटना पुरानी है किन्तु आज की स्थिति की बहुत संवादी है। एक राजा के मन में विचार आया—मेरे राज्य में बहुत गरीब बच्चे हैं। उनके लिए दूध बहुत जरूरी है। मैं ऐसा प्रयत्न करूं, जिससे बच्चों के लिए दूध की व्यवस्था हो जाए। राजा समर्थ था। उसने पांच बड़ी-बड़ी गायें खरीदीं। एक-एक गाय बीस-बीस सेर दूध देने वाली थी। सब गरीब बच्चों के लिए दूध की व्यवस्था हो गई। उनके ऊपर ग्वाले को देख-रेख के लिए रख दिया। कुछ दिन तक बच्चों को गाढ़ा दूध मिलता रहा। चार-पांच मास बाद दूध पतला होने लगा। ग्वाले के मन में स्वार्थ की भावना प्रबल बन गई। उसने सोचा—अच्छा अवसर है, क्यों नहीं, मैं दूध घर ले जाऊं। ग्वाले ने तीस-चालीस किलो दूध अलग कर लिया और उसमें इतना पानी मिला दिया। दूध पतला होना ही था। एक दिन राजा ने देखा—दूध पतला है। उसने ग्वाले से कहा—दूध पतला कैसे है ? ग्वाले ने कहा—जैसा गायें देती हैं, वैसा ही है, मैं क्या करूं। गाय अगर सघन दे तो सघन होगा और पतला दे तो पतला होगा। गायें दूध पतला ही देती हैं तो गाढ़ा कहां से होगा ?

राजा ने सोचा—बात ठीक नहीं है। मंत्री से सलाह की। मंत्री ने कहा—एक अधिकारी की नियुक्ति कर दें। राजा ने उस पर एक और अधिकारी को नियुक्त कर दिया। वह अधिकारी भी स्वार्थ से मुक्त नहीं था। उसने कुछ दिन तो सम्यक् देख-भाल की फिर अधिकारी का घर भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भरने लगा। एक से दो हो गये। दूध में और पतलापन आ गया। राजा ने कहा—बात क्या है ? दूध और पतला हो गया। राजा ने फिर मंत्री से परामर्श कर एक और अधिकारी को नियुक्त कर दिया। अब तीन घर भरने लगे, दूध पतला होता चला गया, पानी ज्यादा डाला जाने लगा। जहां एक का स्वार्थ पूरा होता था वहां तीनों के स्वार्थ पूरे होने लगे। अधिकारियों की नियुक्ति होती गई और दूध भी उसी अनुपात में पतला होता गया। एक दिन यह स्थिति आई—दूध में पानी नहीं किन्तु पानी में दूध मिलाया जाने लगा। यदि राजा दो-तीन अधिकारी और नियुक्त करता तो शायद दूध की सफेदी भी समाप्त हो जाती।

परार्थ और परमार्थ का गुरुत्वाकर्षण

जब स्वार्थ की चेतना प्रबल बन जाती है और अधिकारियों पर अधिकारियों की नियुक्तियां बढ़ती चली जाती है तब दूध पतला होता चला जाता है। क्या आज यही स्थिति नहीं हो रही है ? एक कार्य के लिए न जाने कितने अधिकारीयों की नियुक्ति होती है किन्तु फिर भी कार्य ठीक से संचालित नहीं हो रहा है। जब तक मूल बात नहीं बदलेगी, स्वार्थ की चेतना नहीं बदलेगी, स्वार्थ, परार्थ और परमार्थ—इनका संतुलन नहीं होगा, तब तक समस्या का समाधान नहीं होगा। ध्यान करने वाले व्यक्ति का सम्बन्धों के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण बनेगा, वह सम्बन्ध को स्वार्थ की दृष्टि से अस्वस्थ नहीं बनाएगा, प्रत्येक सम्बन्ध को शालीनता से देखेगा, परार्थ और परमार्थ की चेतना के आधार पर भी देखेगा। जहां परार्थ और परमार्थ का गुरुत्वाकर्षण है वहां सब ग्रह अपने-अपने स्थान पर चलेंगे। पूरा समाज इस एक गुरुत्वाकर्षण से बंधा रहेगा तो वह अस्त-व्यस्त नहीं होगा। ध्यान करने वाले व्यक्ति सम्बन्ध शुद्धि का विकास करें, यह आवश्यक है।

रहस्य व्यवहार की पवित्रता का

भाव शुद्धि, विचार शुद्धि, चर्या शुद्धि, अर्थ शुद्धि और संबंध शुद्धि—ये पांच ध्यान के फल हैं। भाव शुद्धि और विचार शुद्धि विकसित होगी तो व्यवहार जगत् में ये तीन शुद्धियां विकसित होंगी—चर्या की शुद्धि, आर्थिक शुद्धि और सम्बन्ध शुद्धि। इन पांच शुद्धियों के समुद्र का नाम है—ध्यान।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन पांच फलों में से एक भी फल न मिले तो मानना चाहिए—ध्यान का लेश भी मुझमें नहीं आया है। अगर इनका विकास हो तो मानना चाहिए—मैंने ध्यान की साधना की है, ध्यान को समझा है, ध्यान जीवन में उतरा है। ये शुद्धियां विकसित नहीं हैं तो मानना चाहिए—आप ध्यान की दहलीज तक नहीं पहुंचे हैं, दरवाजा खुला नहीं है, बंद ही पड़ा है। ध्यान तक पहुंचने के लिए पुनः चाबी को घुमाना होगा। यह कसौटी आपके सामने प्रस्तुत है। आप स्वयं अपने आप को देखें—भीतर में कितना परिवर्तन आया है और व्यवहार में कितना परिवर्तन आया है। परिवर्तन दोनों ओर से आता है। अगर आप यह सोचें—भीतर में बहुत परिवर्तन आ गया, बड़ी शान्ति रहती है, ध्यान करता हूं तब ऐसा लगता है—जैसे कोई अमृत पी लिया है, किन्तु यदि बाहर में विष ही विष घोल हो रहे हैं तो ध्यान की सार्थकता संदिग्ध है। भीतर में अमृत है तो बाहर में भी अमृत आना चाहिए। हम ध्यान को भी धोखा न बनाएं, विडंबना न बनाएं। जैसा आजकल हो रहा है कि बस ध्यान करो फिर कोई चिन्ता नहीं है, चाहे नशा करो, शराब पियो, मुक्त यौनाचार करो, जश्न मनाओ, गलत साधनों का प्रयोग करो, तुम्हारा सब कुछ ठीक हो जाएगा। यह कैसी विडंबना है ? हम ध्यान को बिल्कुल पवित्र रखें, इस धोखे में कभी न जाएं। जो इस धोखे में चले हैं, उन्होंने ध्यान को भी कलंकित किया है और धर्म को भी एक विडंबना की स्थिति में पहुंचा दिया है। हम बहुत पवित्रता के साथ यह अनुभव करें—ध्यान की क्या मर्यादा है ? ध्यान का क्या प्रतिफल है ? इस दृष्टि से भीतर और बाहर—दोनों के प्रति जागरूकता बढ़े। इस उभयमुखी जागरूकता में ही जीवन व्यवहार की पवित्रता का रहस्य छिपा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हृदय रोग : कारण और निवारण

'धम्मो मंगलमुक्किट्ठं'—धर्म उत्कृष्ट मंगल है—यह भगवान् महावीर की वाणी है। प्रश्न है—धर्म को उत्कृष्ट मंगल क्यों कहा गया ? क्या विशेषता है इसमें ? यदि इस प्रश्न की गहराई से मीमांसा करें तो पता चलेगा कि धर्म आत्मा की शुद्धि करता है, साथ ही साथ व्यावहारिक वातावरण को भी पवित्र बनाता है, शरीर को भी स्वस्थ बनाता है। यह बात आज इस वैज्ञानिक युग में स्पष्ट होती जा रही है।

बदल गए हैं संदर्भ

प्राचीनकाल में कहा जाता था—'धर्म करो, स्वर्ग और मोक्ष मिलेगा, अधर्म करोगे तो नरक में जाओगे।' उस समय स्वर्ग और नरक के आधार पर धर्म की व्याख्या की गयी। किन्तु इस वैज्ञानिक युग में स्वर्ग और नरक के आधार पर व्याख्या कोई अर्थ नहीं रखती। अब व्याख्या का अर्थ और प्रकार—दोनों बदल गया है। आज किसी व्यक्ति से कहा जाए, तुम धर्म करो, स्वर्ग में जाओगे तो उसे विश्वास ही नहीं होगा। वह सोचेगा—आज के जीवन में इतनी सुख-सुविधाएं हैं कि इनसे ज्यादा स्वर्ग में और क्या मिलेगा ? कहा जाए—'नरक में जाना चाहोगे ?' वह कहेगा—नरक जाने में बुरा ही क्या है। नरक में जाऊंगा तो उसे भी स्वर्ग बना दूंगा। नरक में मित्र भी तो साथ में होंगे, फिर चिंता किस बात की है ?

स्वर्ग और नरक से संबंधित बातें आज बहुत कारगर नहीं होतीं। आज धर्म को समझने के लिए हमारा दृष्टिकोण भी वैज्ञानिक होना चाहिए। धर्म उत्कृष्ट मंगल है, किन्तु कौन-सा धर्म ? बताया गया—वह धर्म उत्कृष्ट मंगल है, जिसके अहिंसा, संयम और तप—ये तीन लक्षण हैं। इन तीन के आधार पर हम शरीर की व्याख्या करें, शरीर में होने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वाले रोगों पर ध्यान दें तो कुछ नया प्रकाश मिलेगा। आज संदर्भ है—हृदयरोग का। धर्म के संदर्भ में, अहिंसा, संयम और तपस्या के संदर्भ में इसकी मीमांसा करनी है। क्या हृदयरोग पर धर्म का कोई प्रभाव होता है ? प्रेक्षाध्यान का कोई प्रभाव होता है ?

क्यों होता है हृदय रोग ?

केलिफोर्निया, अमेरिका के एक प्रोफेसर डॉ. आर्निश ने हृदयरोग पर लंबे समय तक खोजें कीं। खोज के बाद उनके जो निष्कर्ष प्रकाशित हुए हैं, वे धर्म की व्याख्या करने वाले हैं। उन्होंने अपने निष्कर्ष में लिखा है—'हृदय की बीमारी का मुख्य कारण है कोलेस्ट्रोल या वसा का जमाव। रक्त में चर्बी की मात्रा बढ़ जाने पर रक्तवाहिनियों का रास्ता जाम हो जाता है। इससे हृदयशूल, हृदयाघात या हार्ट अटैक होता है। यदि मनुष्य कोलेस्ट्रोल की मात्रा को कम कर सके, वसा की मात्रा को कम कर सके, उसकी धुलाई-सफाई कर सके, रक्तवाहिनी के रास्तों को क्लियर रख सके तो हृदयरोग की कोई संभावना नहीं रहती, हृदयरोग की चिकित्सा बहुत वर्षों तक दवाइयों पर निर्भर रही। अब एक तरीका नया निकला है—बाईपास सर्जरी का। जब धमनियां सिकुड़ जाती हैं, ब्लाक्ड हो जाती हैं, तब बाईपास शल्यक्रिया से उन्हें सुचारु बनाया जाता है।

संतुलित पद्धति

डॉ. आर्निश ने बताया—बाईपास से रक्त-संचार की प्रणाली तो ठीक हो जाती है, किन्तु पहले से जो जमा हुआ कचरा है, उसका परिष्कार नहीं हो पाता, उसकी सफाई नहीं हो पाती। वह गंदगी बनी की बनी रहती है। इसलिए सफाई बहुत जरूरी है, जो मैल जमा हुआ है, उसे साफ करना नितान्त आवश्यक है। इस कचरे को साफ नहीं किया जाए तो कोरी बाईपास सर्जरी कारगर नहीं हो पाती। वह एक बार कुछ राहत भले ही दे दे, किन्तु यह समस्या का स्थायी उपाय नहीं है। इस जमा मैल की सफाई के लिए डॉ. आर्निश ने जिस पद्धति का विकास किया, वह एक संतुलित पद्धति है। उसमें उन्होंने चार बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया—

१. व्यायाम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. यौगिक क्रिया
३. ध्यान
४. सम्यक् आहार।

डॉ॰ आर्निश का कथन

अगर इन चार बातों पर मनुष्य ध्यान दे और दवा का सीमित प्रयोग हो तो हृदय की बीमारी मिटेगी और जो रोग से आक्रान्त नहीं हैं, वे इससे बचे रहेंगे। उपरोक्त चार बातों की हम विस्तार से समीक्षा करें। इन चारों में सबसे ज्यादा बल संयत आहार पर दिया गया। कहा गया— गरिष्ठ भोजन जहर है। यह किसी आध्यात्मिक ऋषि का स्वर नहीं है, किसी संत-महात्मा की वाणी नहीं है, बल्कि एक कार्डियोलॉजिस्ट का स्वर है, जो अमेरिका का एक प्रसिद्ध डॉक्टर है। डॉ॰ आर्निश ने कहा—जो हृदयरोग से बचना चाहते हैं, उन्हें मांस, मछली, अण्डा और यहां तक कि दूध से बनी चीजें भी नहीं खानी चाहिए। वह चर्बी बढ़ाने वाले भोजन का सर्वथा परिहार करे। एक मुनि के लिए कहा गया—'पणीयं रसभोयणं विष तालउडं जहा—'यह प्रणीत गरिष्ठ भोजन विष है। तालपुट जहर जैसा है। रसेसु णो गिज्जेज्झा'—मुनि रसों में गृद्ध न हो। बहुत दूध, दही, घी, मिठाइयां, चटपटी चीजें खाता ही चला जाए और हृदयरोग से बचने का स्वप्न भी देखे, ये दोनों बातें कभी संभव नहीं हैं।

चर्बीयुक्त भोजन से बचें

आज लोग बहुत जल्दी बूढ़े हो रहे हैं, जल्दी मर रहे हैं। पचास वर्ष की अवस्था में कोई चला जाता है तो कहा जाता है—कोई बात नहीं, पूरी अवस्था पाकर गया है। चालीस-पचास वर्ष के बाद बूढ़ा होना स्वाभाविक माना जा रहा है। यह स्वाभाविक नहीं है। उसे और जीना चाहिए था। धारणाएं गलत बन गईं। व्यक्ति असमय में इसलिए चला गया कि भोजन दीर्घकाल तक जीने के अनुकूल नहीं था। आहार का संयम होना ही चाहिए। ऐसा आहार न लें, जिससे कोलेस्ट्रोल या वसा की मात्रा बढ़े। प्रणीत भोजन का अर्थ है—चर्बीयुक्त भोजन। कहा गया—मुनि को ऐसा भोजन नहीं करना चाहिए, जिसमें घी झरता हो। आहार का संयम करना बहुत कठिन है। वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इतना प्रियकर और स्वादिष्ट होता है कि व्यक्ति खाने का लोभ संवरण नहीं कर पाता। कोई भोज हो, विवाह-शादी का प्रसंग हो और उसमें इस तरह का भोजन न हो, यह आज संभव ही नहीं है। पहले शादी-विवाह के ऐसे आयोजन लगातार चार-पांच दिनों तक चलते थे। अब एक दिन में ही सब संपन्न हो जाते हैं, यह अच्छी बात है, किन्तु आजकल लोग एक दिन में ही कई दिनों की कसर निकाल लेते हैं। शादी-बारातों में तो आयोजकों की तरफ से समय के अनुसार पूरी एक तालिका बनती है। यह निश्चित होता है कि कितने बजे बारातियों को क्या-क्या दिया जाए। वह तालिका इतनी समयबद्ध होती है कि खाने वाले को हाथ धोने की भी फुर्सत नहीं मिलती। खाने में भी होड़ और प्रतिस्पर्धा चलती है। परिणामस्वरूप पाचनतंत्र पर जो गुजरती है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।

भोजन इतना बड़ा बीमारी का कारण है, किन्तु इसी पर सबसे कम ध्यान दिया गया। आहार-संयम की बात केवल धर्म तक सीमित रही। किन्तु अब यह केवल साधना की बात नहीं है। जो व्यक्ति स्वस्थ रहना चाहता है, हृदयरोग से बचना चाहता है, उसे आहार-संयम पर उतना ही ध्यान देना होगा, जितना एक साधक को। एक हृदयरोग विशेषज्ञ कहता है—आहार का संयम करो, तो ऐसा लगता है जैसे कोई धर्म का व्यक्ति उपदेश की भाषा में किसी गृहस्थ या श्रावक को उपदेश दे रहा है। स्वास्थ्य के लिए आज वे निर्देश दिये जा रहे हैं, जो धर्म करने वाले व्यक्ति को दिये जाते हैं। इसका एक निदर्शन है—आहार-संयम।

उलझनभरी जिन्दगी

हृदयरोग का दूसरा हेतु है—उलझनभरी जिन्दगी। मानसिक तनाव या उद्वेग को भी हृदयरोग का मुख्य कारण माना गया है। आज हर व्यक्ति यही कहेगा—मैं बहुत व्यस्त हूं। किसी से भी पूछ लें, उत्तर यही होगा। ऐसा लगता है, जैसे खाली होना, फुर्सत में होना कोई अपमानजनक बात हो। व्यस्त होने का मतलब है हृदयरोग को निमंत्रण देना। आज आपने कोई काम शुरू किया। कुछ घण्टे बाद उठे तो आपका दिमाग इतना हल्का होना चाहिए कि उस काम से संबंधित कोई तनाव फिर मन में न रहे। यदि ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होता है तो आपका दिमाग स्वस्थ रहेगा, हृदय पर दबाव कम पड़ेगा। काम करने के बाद मन में यदि यह तनाव बना रहा कि यह काम बाकी रह गया, यह ठीक से नहीं हुआ, इसं काम को इस तरह करते तो अच्छा होता, तो मान लीजिए—हृदय पर आपने एक असहनीय बोझ रख ही दिया। इससे हृदय पर दबाव पड़ेगा। यह मानसिक उद्वेग हृदयरोग का बहुत बड़ा कारण बनता है। जीवन की सबसे अच्छी शैली यह है कि ऐसा चिंतन उभरे—जो करना था, कर लिया। अब कोई काम बाकी नहीं है। जयाचार्य ने भिक्षु जस रसायन में लिखा है—"आचार्य भिक्षु से जब अंतिम समय में पूछा गया—'आपका शरीर कुछ अस्वस्थ-सा हो रहा है, ऐसी स्थिति में कैसा लगता है ?' आचार्य भिक्षु ने उत्तर दिया—'हरख हिये।' मेरे हृदय में तो बड़ा हर्ष है, कोई खेद नहीं है, क्योंकि उनायत कोई रही नहीं। मन में कोई न्यूनता रही नहीं। जो करना था, कर चुका, कोई काम मेरा बाकी नहीं है।" यह चिंतन रहे तो दिमाग बिल्कुल हल्का रहेगा। बोझिल दिमाग हृदय पर भी उतना ही नहीं, बल्कि उससे ज्यादा भार लाद देता है। हाथी का भार गधा कैसे झेल सकेगा ? ज्यादा भार लाद दिया जायेगा तो फिर हृदय को टूटना ही पड़ेगा।

क्रोध, भय और लोभ

कषाय, क्रोध, भय आदि भी हृदय को दुर्बल बनाते हैं। लोभ और ईर्ष्या भी हृदय को दुर्बल बनाते हैं। क्रोध के बारे में हम जानते हैं कि क्रोध आयेगा तो हृदय पर तुरंत असर हो जायेगा। क्रोध की मात्रा बहुत ज्यादा होती है तो कभी-कभी हार्ट-अटैक भी हो जाता है। किन्तु लोभ भी कम जिम्मेवार नहीं है। आज छोटी अवस्था में ही बहुत सारे युवक हृदयरोग के शिकार हो रहे हैं। कारण क्या है ? इसका पहला कारण है—भय का आवेग और दूसरा कारण है—लोभ का आवेग। तीसरा मानें तो वह है क्रोध का आवेग। भय भी चारों ओर से है। कानून का भय, सरकार का भय, समाज का भय, पद-प्रतिष्ठा का भय। यह भय एक संत्रास पैदा कर रहा है। लोभ भी तनाव का एक बहुत बड़ा हेतु बन रहा है। व्यक्ति सोचता है—मुझे बहुत बड़ा आदमी बनना है। पहले नम्बर का धनी बनना है, पहली पंक्ति का राजनेता बनना है। इस नम्बर वन की बात ने इतना तनाव पैदा कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दिया है, इतनी होड़ और दौड़ पैदा कर दी है कि हर आदमी इस अंधी दौड़ में शामिल हो गया है। इससे समस्याएं पैदा हो रही हैं। एक दार्शनिक ने ठीक ही कहा था—'मैं इसलिए सुख से जीता हूं, क्योंकि मेरे मन में नम्बर वन बनने की मूर्खता कभी स्थान नहीं पा सकी। यह सबसे बड़ी मूर्खता है, जिसे आज आदमी पाल रहा है। लोभ अथवा आसक्ति की यह तीव्रता उसके हृदय को दुर्बल बना रही है, रोग से आक्रान्त कर रही है।

श्रम का अभाव

हृदयरोग का तीसरा कारण है —श्रम का अभाव। जम कर खाना खा चुकने के बाद लोग या तो खाट को तोड़ते हैं या गद्दी की शरण लेते हैं। फिर हृदयरोग नहीं होगा तो क्या होगा ? श्रम शरीर के लिए ही नहीं, हृदय के लिए भी बहुत आवश्यक होता है। श्रम को नीचा मान लिया गया, किन्तु स्वास्थ्य के लिए वह कितना आवश्यक है, इस पर चिंतन नहीं किया गया। बिना श्रम के शरीर में ठीक से रक्त-संचार नहीं हो पाता और रक्त-संचार अवरुद्ध हो जाए तो फिर हृदयरोग क्यों नहीं होगा ? रक्त-संचार की पूरी प्रणाली का केन्द्रबिन्दु हृदय ही है। जब रक्त-संचार ही बाधित हो गया तब हार्ट फेल क्यों नहीं होगा ?

व्यायाम और यौगिक क्रिया

डॉ. आर्निश ने श्रम के लिए दो बातें बताईं—व्यायाम और यौगिक क्रिया। व्यायाम शरीर से संबंध रखता है और यौगिक क्रियाएं मन से संबंध रखती हैं। पहले कहा जाता था—जिसे हृदयरोग हो, उसे ज्यादा से ज्यादा विश्राम करना चाहिए, श्रम नहीं करना चाहिए, खाट पर लेटे रहना चाहिए। आज के डॉक्टरों ने इस मान्यता को नकार दिया है। आज कहा जा रहा है, श्रम के अभाव में हृदय की बीमारी और बढ़ जायेगी। इतनी शर्त जरूर रखी गयी है कि श्रम उतना ही करें, जिससे थकान न आए। थकान हृदयरोग में बहुत बड़ी बाधा है। थकान न हो इतना श्रम करना बहुत आवश्यक है।

शरीर प्रेक्षा

यौगिक क्रियाओं में कुछ हल्के आसन और प्राणायाम आते हैं। वे हृदयरोग में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बहुत लाभकारी होते हैं। ध्यान के संदर्भ में डॉ. आर्निश का मत है कि और चाहे कुछ करें या नहीं, किन्तु शरीरप्रेक्षा का प्रयोग अवश्य करें। शरीरप्रेक्षा शब्द डॉ. आर्निश का नहीं है। वे इस बात को इस तरह कहते हैं—'ध्यान में बैठ जाएं और चित्त को रक्त-संचार की क्रिया पर टिका दें। ध्यान करें कि हमारे शरीर में ठीक से और सुचारुरूप से रक्त का संचार हो रहा है, प्रेक्षाध्यान की भाषा में इसे ही शरीर की प्रेक्षा कहा जाता है। डॉ. आर्निश इस ध्यान की क्रिया के लिए एक घंटे का समय पर्याप्त बताते हैं।

अंतर है दृष्टि का

आहार का संयम, प्राणायाम, व्यायाम, यौगिक क्रिया और ध्यान—ये चार तत्त्व जिन्हें हृदयरोग नहीं हैं, उन्हें उससे बचाते हैं और जिन्हें हैं, उन्हें उससे मुक्ति दिलाते हैं। ये सारी बातें धर्मोपदेश जैसी हैं। यह विचित्र बात है—एक डॉक्टर ऐसी सलाह देता है तो व्यक्ति उसे गंभीरता से लेता है और एक धर्म का उपदेशक इन सचाइयों को प्रस्तुत करता है तो आदमी उतना ध्यान नहीं देता। उसे यह मुफ्त का सा लगता है।

अध्यापक ने छात्र से पूछा—'सूर्य के प्रकाश और बिजली के प्रकाश में क्या अन्तर है ? छात्र ने उत्तर दिया—'मास्टरजी, अन्तर तो स्पष्ट है। सूर्य का प्रकाश मुफ्त मिलता है, जबकि बिजली के प्रकाश का बिल चुकाना पड़ता है।'

कोलेस्ट्रोल कैसे घटाएं ?

आज ऐसा लगता है कि बिल चुकाने वाली बात को लोग जल्दी पकड़ते हैं और मुफ्त वाली बात की उपेक्षा करते हैं। डॉ. आर्निश की बात पर मुझे आश्चर्य हुआ कि अमेरिका में आज पचास लाख से ज्यादा लोग हृदयरोग से पीड़ित हैं। वहां बाईपास सर्जरी का तीस से चालीस हजार डालर का खर्च आता है। जो इसके उपचार हेतु कोलेस्ट्रोल को कम करने की दवाइयां लेते हैं, उन्हें एक वर्ष में इस पर चार या पांच हजार डालर ही खर्च करना पड़ता है।

यहां यह बात ध्यान देने योग्य है कि स्वाभाविक रूप से कोलेस्ट्रोल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कम करने में बहुत लाभ है। किन्तु दवा के द्वारा कोलेस्ट्रोल कम करने का प्रयत्न किसी 'साइड इफेक्ट' को जन्म दे सकता है। उसके सेवन से आप किसी पारिपार्श्विक बीमारी के शिकार हो सकते हैं किन्तु विडंबना यही है कि मुफ्त वाली बात लोगों को पसंद नहीं आती। पसंद आती है वह बात, जिसमें अच्छी-खासी रकम खर्च हो रही हो।

तेज दवाओं के प्रयोग से बचें

लुधियाना की घटना है। वहां सी॰ एम॰ सी॰ नाम का एक बड़ा अस्पताल है। उस अस्पताल के एक वरिष्ठ फिजीशियन डॉ॰ मुखर्जी मिले। बातचीत के प्रसंग में डॉ॰ मुखर्जी ने बताया—'हमारे पास कई तरह के मरीज आते हैं। मेरा उन्हें अधिक दवा देने में विश्वास नहीं है। सामान्यतः उन्हें एक या दो दवा लिख देता हूं। लोग सोचते हैं—डॉक्टर साहब ने ठीक से प्रेसक्रिप्शन नहीं लिखा। इतनी-सी दवा से कैसे ठीक होंगे ?' फलतः वह मरीज उस पर्चे को लेकर दूसरे डॉक्टर के पास जाता है। वह डॉक्टर एक पन्ने में जब आठ-दस तरह की दवाइयां लिख देता है, जिनकी कीमत चार-पांच सौ तक की होती है तो वह संतुष्ट हो जाता है, वह सोचता है, इन डॉक्टर साहब ने मेरा मर्ज ठीक पहचाना है। यह एक मानसिकता बन गयी कि ज्यादा दवाइयां लेने से स्वास्थ्य जल्दी उपलब्ध हो सकेगा। इस मानसिकता को तोड़े बिना हृदयरोग का उपचार कैसे हो सकता है ? शरीर की अन्य व्याधियों के लिए ली जा रही दवाइयों में प्रायः ऐसी होती हैं, जो हृदय को क्षति पहुंचाने वाली होती हैं। ज्यादा तेज दवाइयों का प्रयोग हृदय को दुर्बल बनाता है।

संदर्भ प्रेक्षाध्यान का

इस सारी समस्या पर प्रेक्षाध्यान की दृष्टि से विचार करें। जो व्यक्ति दीर्घ श्वास का नियमित प्रयोग करता है, उसके हृदयरोग की संभावना अत्यन्त क्षीण हो जाती है। श्वासप्रेक्षा के दो प्रयोग हैं—दीर्घश्वासप्रेक्षा और समवृत्ति श्वासप्रेक्षा। इसका एक तीसरा प्रयोग है—उज्जायी प्राणायाम। यह भी हृदयरोग की सबसे अच्छी दवा है। जो व्यक्ति उज्जायी प्राणायाम करता है, वह हृदय की रक्तसंचार प्रणाली को स्वस्थ बना लेता है। हृदयरोग के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संदर्भ में इन प्रयोगों के बड़े सुन्दर परिणाम आए हैं।

जप का प्रयोग भी बहुत लाभकारी है। जो व्यक्ति ह्रीं का जप करता है, वह बहुत हद तक इस बीमारी से अपने को बचा लेता है।

सादा जीवन : उच्च विचार

जो व्यक्ति धर्म के अनुसार अपनी जीवनशैली का निर्माण नहीं करता, उसकी जीवनशैली बीमारियों को निमंत्रण देने वाली होती है। वर्तमान की जीवनशैली को बीमारियों को बुलावा देने वाली जीवनशैली है। इतनी भागदौड़, व्यस्तता, निरंतर मानसिक तनाव, चिंता, भय और लोभ की भावना से घिरा आदमी हृदयरोग जैसी बीमारी से अछूता कैसे रह सकता है ? सादा जीवन और उच्च विचार जहां है, वहां हृदयरोग क्यों आयेगा ? आखिर बुरा बुरे से ही तो जाकर मिलता है। हृदयरोग एक बुराई है। वह सादा जीवन जैसी भलाई के पास क्यों जायेगा ?

स्वास्थ्य का सूत्र है स्वस्थ जीवनशैली

इन वर्षों में प्रेक्षाध्यान साधना को प्रसार देने वाले अनेक केन्द्र विकसित हुए हैं, उनमें एक प्रमुख केन्द्र है—अध्यात्म साधना केन्द्र, दिल्ली। अध्यात्म साधना केन्द्र में प्रेक्षाध्यान शिविरों के साथ-साथ सूर्य किरण चिकित्सा के शिविर भी आयोजित होते हैं। वर्तमान में इस केन्द्र के निदेशक श्री धर्मानन्द एवं डॉ. विमल छाजेड़ 'प्रेक्षाध्यान और हृदयरोग' तथा 'प्रेक्षाध्यान और अस्थमा'—इन दो विषयों पर परीक्षण कर रहे हैं। अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, दिल्ली द्वारा स्वीकृत इन प्रोजेक्टों के बहुत उत्साहवर्द्धक परिणाम सामने आए हैं। विश्वास के साथ यह घोषणा की जा रही है—यदि व्यक्ति प्रेक्षाध्यान का प्रयोग करे, श्वासप्रेक्षा और कायोत्सर्ग का निरंतर अभ्यास करे, अपने खानपान को सात्विक बनाए, जीवनशैली को व्यवस्थित बनाए तो हृदयरोग की संभावनाओं को मिटाया जा सकता है, हार्ट अटैक, बाईपास सर्जरी जैसी अवांछनीय घटनाओं से बचा जा सकता है। अध्यात्म साधना केन्द्र में निरंतर साधना करने वाले श्री सूरी का कथन है—मैं हार्ट का मरीज था। मैने प्रेक्षा के प्रयोग किये, कायोत्सर्ग का अभ्यास किया और आज स्थिति यह है कि मुझे कभी अनुभव भी नहीं होता कि मैं हार्ट की बीमारी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से पीड़ित था। मुझे ऐसा लगता है कि स्वस्थ और शान्त जीवन का रहस्य मेरे हाथ में आ गया है।'

यह अनुभव एक व्यक्ति का नहीं है। इस साधना-क्रम में जीने वाले प्रत्येक व्यक्ति का है। स्वास्थ्य का सूत्र है स्वस्थ जीवनशैली। हम जीवन शैली को बदलें। अहिंसा, संयम और श्रम हमारी जीवनशैली के अंग बनें। ऐसी जीवनशैली शरीर की बीमारियों के लिए सबसे बड़ी दवा है। अहिंसा, संयम और श्रम प्रधान जीवनशैली जिसे उपलब्ध है, उसे संभवतः डॉक्टर और दवा की शरण में जाने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवन की शैली कैसी हो ?

आयुर्वेद का उद्देश्य रोग की चिकित्सा करना ही नहीं है, रोग न हो, उसकी व्यवस्था करना भी उसका उद्देश्य है। आयुर्विज्ञान ने भी रोग की प्रतिरोधात्मक व्यवस्था पर बहुत ध्यान केन्द्रित किया है। अनेक चिकित्सा-पद्धतियां, अनेक औषधियों के वर्ग, फिर भी रोग बढ़ रहे हैं। चिन्तन और अनुसंधान के बाद निष्कर्ष यह निकला कि जीवनशैली अच्छी नहीं है।

वर्तमान जीवनशैली

वर्तमान जीवनशैली के प्रमुख तत्त्व हैं—स्पर्धा, उतावलापन, अधीरता, असहिष्णुता और असंयम। ये सब अंतःस्रावी ग्रंथियों के स्राव को असंतुलित करते हैं, रोग को निमंत्रण मिल जाता है। हृदय रोग के विशेषज्ञ कहते हैं—वर्तमान जीवनशैली बदलनी चाहिए।

मानसिक असंतुलन, चंचलता और निषेधात्मक दृष्टिकोण बहुत बढ़ा है। फलतः मानसिक रोग बहुत बढ़े हैं। मनश्चिकित्सक कहते हैं—मानसिक स्वास्थ्य के लिए वर्तमान जीवनशैली में परिवर्तन होना आवश्यक है।

हिंसा, आतंक, पारिवारिक संघर्ष, कलह, तलाक, दहेज से जुड़ी हिंसा, भ्रूण हत्या आदि अमानवीय-समस्याएं बढ़ती जा रही हैं। धर्म के तत्त्ववेत्ता कहते हैं—ये सब धर्म-शून्य जीवनशैली के परिणाम हैं इसलिए वर्तमान जीवनशैली बदलनी चाहिए।

क्षेत्र अनेक और सबका स्वर एक है कि जीवनशैली बदले। इस अव्यक्त या व्यक्त स्वर को ध्यान में रखकर आचार्यश्री तुलसी ने जैन जीवनशैली का सुव्यवस्थित रूप जनता के सामने प्रस्तुत किया। उसके केन्द्र में जैन-धर्म का अनुयायी है पर परिधि में विश्व का प्रत्येक व्यक्ति। वह शैली स्वस्थ जीवन की शैली है। उसके सूत्र शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

के लिए महौषध, भावनात्मक परिवर्तन के लिए उपयोगी और धर्म की चेतना को जागृत करने वाले हैं।

नवांगी जीवनशैली

शरीर, श्वास, इन्द्रिय, प्राण, मन, भाव और चेतना का समन्वय है जीवन। जीवन की वही शैली अच्छी हो सकती है, जिसमें शरीर को स्वस्थ, श्वास को लयबद्ध, इन्द्रिय को कार्यक्षम, प्राण को गतिशील, मन को एकाग्र, भाव को विशुद्ध और चेतना को निरावरण बनने का अवसर मिले। जैन जीवनशैली के नौ सूत्रों का निर्धारण इसी पृष्ठभूमि पर किया गया है—

१. सम्यक्-दर्शन
२. अनेकान्त
३. अहिंसा
४. समण संस्कृति—सम, शम, श्रम
५. इच्छा परिमाण
६. सम्यक् आजीविका
७. सम्यक् संस्कार
८. आहार शुद्धि और व्यसन-मुक्ति
९. साधर्मिक वात्सल्य।

सम्यक् दर्शन

गृहस्थ का जीवन रागात्मक होता है। रागात्मकता को अवांछनीय भी नहीं माना जाता। उस पर वीतरागता का अंकुश नहीं हो, वह असंतुलित हो जाती है। संतुलन जैन जीवनशैली की मौलिक विशेषता है।

देव-गुरु और धर्म के प्रति आस्था सम्यक्-दर्शन है।

सम्यक्-दर्शन के फलित हैं—

१. सम्यक् दृष्टिकोण का विकास।
२. विधायक दृष्टिकोण का विकास।
३. तीव्रतम क्रोध, मान, माया और लोभ का उपशमन!

शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व विनम्रता, भाईचारा, मैत्री, ऋजुव्यवहार और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यवसाय शुद्धि—इनके विकास में बाधक बनता है मिथ्या दृष्टिकोण। सम्यक्-दर्शन की शैली का अनुगमन होते ही ये बाधाएं दूर हो जाती हैं, जीवन आलोक से भर जाता है।

अनेकान्त

सामुदायिक जीवन जीने के लिए जरूरी है सापेक्षता, समन्वय और शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

जीवन सापेक्ष है इसलिए अपने विचार को मूल्य देते हुए भी हम दूसरे के विचार को समझने का प्रयत्न करें। वही व्यक्ति स्वस्थ सामाजिक जीवन जी सकता है, जो सापेक्षता और अनाग्रह का प्रयोग करता है।

मैं जो सोचता हूं, उसमें सत्यांश है। दूसरा सोचता है, उसमें सत्यांश नहीं है, यह कैसे माना जा सकता है ? वही व्यक्ति आपसी संबंधों को मधुर बना सकता है, जो अपने और दूसरों के विचारों में समन्वय साध सकता है।

सापेक्ष और समन्वय के दृष्टिकोण का विकास ही शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व का आधार है।

पक्षपात और मिथ्या आग्रह, जीवन को नीरस, कुंठित और विषादपूर्ण बनाते हैं। अनेकांती जीवनशैली में दृष्टिकोण विनम्र होता है। उससे विवाद अथवा झगड़े के प्रसंग अपने आप कम हो जाते हैं। पारिवारिक और सामाजिक जीवन में सरसता, प्रसन्नता और मधुरता विकसित हो जाती है।

मानवीय संबंधों में सुधार की अपेक्षा सारे विश्व में अनुभव की जा रही है। सापेक्षता की अनुभूति के बिना वह संभव नहीं है।

अनेकांत की शैली को जीने के फलित हैं—

१. सापेक्ष दृष्टिकोण का विकास।

२. समन्वय की मनोवृत्ति का विकास।

३. विवादास्पद प्रसंग में सामंजस्य स्थापित करने वाली मनोवृत्ति का विकास।

४. अनाग्रह और विनम्रतापूर्ण मनोवृत्ति का विकास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अहिंसा

जीवन-यापन और हिंसा को अलग-अलग करना शक्य नहीं है फिर भी सम्यक्दर्शनी व्यक्ति चिन्तन करता है—हिंसा का अल्पीकरण कैसे हो ? यह चिंतन अहिंसा के विकास का महत्त्वपूर्ण प्रस्थान है। अल्पीकरण का प्रथम सूत्र बनता है अनावश्यक हिंसा का वर्जन। मनुष्य अपने प्रमाद, मोह और लालसा के कारण अनावश्यक हिंसा बहुत करता है। अहिंसा की जीवनशैली के आधार पर जीने वाले व्यक्ति के सामने यह सूत्र वाक्य टंकित रहना चाहिए—हिंसा का अल्पीकरण हो। अनावश्यक हिंसा न हो।

क्रूरता अनावश्यक हिंसा का कारण है। पर-हत्या और भ्रूण-हत्या में क्रूरता प्रत्यक्ष दिखाई देती है। आत्महत्या में प्रत्यक्ष दिखाई देता है आवेश। प्रसाधन-सामग्री में प्रत्यक्ष दिखाई देता है, शृंगार और सौंदर्य का मनोभाव, किन्तु उसकी पृष्ठभूमि में क्रूरता छिपी रहती है।

अनावश्यक हिंसा का वर्जन करने वाला मिट्टी, पानी और वनस्पति का उच्छृंखल उपयोग नहीं करता। वह उनके उपयोग में सीमा और विवेक का प्रयोग करता है।

अहिंसा की जीवन-शैली के फलित हैं—

१. संवेदनशीलता का विकास।

२. पर्यावरण के प्रदूषण की रोकथाम।

३. प्राणी मात्र के प्रति मैत्री का क्रमिक विकास।

समण-संस्कृति

जैन जीवनशैली का प्राण-तत्त्व है—समण संस्कृति। समण प्राकृत भाषा का शब्द है। उसके संस्कृत रूप तीन बनते हैं—समन, शमन, श्रमण।

जिसका मन पवित्र है, जो सब मनुष्यों और जीवों को अपने समान मानता है, वह समन होता है।

जो अपने आवेगों और आवेशों को उपशांत रखना जानता है, वह शमन होता है।

जो तपस्वी है, श्रमनिष्ठ और स्वावलम्बी है, वह श्रमण है।

क्या तुम इसे पसंद करोगे—तुम्हें कोई दूसरा छोटा या हीन समझे और अपने आपको बड़ा या ऊँचा समझे ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या तुम पसंद करोगे—कोई दूसरा आदमी तुम पर क्रोध उगलता रहे, तुम्हारे साथ अप्रिय व्यवहार करता रहे।

क्या तुम पसंद करोगे—कोई दूसरा व्यक्ति तुम्हारे श्रम का शोषण करे ?

यदि ये पसंद नहीं हैं, तो तुम भी अपनी जीवनशैली बदलो। सबको समान समझो। किसी के साथ हीनता का व्यवहार मत करो।

अपने आवेग और आवेश को संतुलित करने का अभ्यास करो।

दूसरे की आजीविका में अवरोध पैदा मत करो।

समण संस्कृति की जीवनशैली के फलित हैं—

१. मानवीय एकता।

२. जातीय घृणा और छुआछूत की समाप्ति।

३. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व।

४. संतुलित व्यवहार।

५. स्वावलम्बन का विकास।

इच्छा परिमाण

पदार्थ सीमित हैं। उपभोक्ता अधिक हैं। इच्छा सबसे अधिक है। इस प्राकृतिक समस्या को सुलझाने के लिए भगवान् महावीर के इच्छा परिमाण का सूत्र दिया। व्यक्तिगत स्वामित्व न हो, यह मानवीय प्रकृति को मान्य नहीं है। व्यक्तिगत स्वामित्व असीम हो, यह स्वस्थ समाज व्यवस्था को मान्य नहीं है। मध्यम मार्ग है—इच्छा का परिमाण करो। व्यक्तिगत स्वामित्व या संग्रह की सीमा करो। व्यक्तिगत उपभोग की सीमा करो।

इच्छा परिमाण का प्रयोग वर्तमान की आर्थिक स्पर्धा और विकास की अंधी दौड़ के लिए चुनौती है। यह कठिन है पर समस्या का समाधान है।

इस इच्छा-परिमाण के फलित हैं—

१. विसर्जन, अर्जन के साथ विसर्जन।

२. स्वस्थ समाज संरचना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक् आजीविका

रोटी के बिना कोई जी नहीं सकता। भिखारी होना अपराध है। शेष रहती है आजीविका। प्रत्येक गृहस्थ जीवन-यापन के लिए उसका आलंबन लेता है। अहिंसा और इच्छा-परिमाण में विश्वास करने वाले व्यक्ति में साधन-शुद्धि की चेतना जाग जाती है। वह येन-केन-प्रकारेण आजीविका नहीं करता। वह उसका सहारा लेता है, जिससे स्वयं का चरित्र विकृत न हो और समाज का चरित्र भी विकृत न बने।

सम्यक् आजीविका के फलित हैं—

१. व्यवसाय शुद्धि, प्रामाणिकता।
२. शराब आदि मादक तथा मांस, मत्स्य, अण्डा आदि अभक्ष्य पदार्थों के व्यापार का वर्जन।
३. तस्करी का वर्जन।
४. खाद्य पदार्थों में मिलावट का वर्जन।
५. शस्त्र के व्यवसाय का वर्जन।
६. जंगलों की कटाई का वर्जन।

सम्यक् संस्कार

दिशाहीन जीवन कहीं पहुंच नहीं पाता। जहां पहुंचना है, वही दिशा सही दिशा हो सकती है। पहुंचना है उस जीवन की भूमि पर, जहां समता है, संतुलन है और आत्मविजय है। प्रारंभ से ही वैसे संस्कारों का निर्माण करना जरूरी है, जो उस भूमि तक पहुंचा सके। जन्म, नामकरण, विवाह, पर्व और मृत्यु—ये विशेष प्रसंग हैं। इन प्रसंगों पर व्यक्ति की पहचान होती है और पहचान के माध्यम बनते हैं संस्कार। जैन जीवनशैली के संस्कार ऐसे हों, जो देश और काल के प्रतिकूल न हों, अनुपयोगी रूढ़ि से जकड़े हुए न हों, जिससे अंधानुकरण एवं अस्वस्थ मनोरंजन की प्रवृत्ति न हो, जो समाज की भूमि पर उत्तेजना और हिंसा के बीज बोने वाले न हों।

सम्यक् संस्कार की जीवनशैली के फलित हैं—

१. अभिवादन तथा पत्र-व्यवहार आदि में जय जिनेन्द्र का प्रयोग।
२. गृहसज्जा आदि में जैन संस्कृति सूचक चित्र, वाक्य आदि को प्राथमिकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आहार-शुद्धि और व्यसन मुक्ति

आहार-शुद्धि का विचार केवल धर्मशास्त्र का ही विषय नहीं है, यह स्वास्थ्य शास्त्र और व्यवहार मनोविज्ञान का भी विषय बन चुका है। बहुत पुराना सूक्त है--जैसा अन्न खाता है, वैसा मन होता है। विज्ञान ने इस सूक्त में कुछ और जोड़ दिया जैसा आहार, वैसा न्यूरोट्रांस-मीटर, जैसा न्यूरोट्रांस मीटर वैसा व्यवहार।

मांस, अण्डे खाने से रक्त वाहिनियां संकरी हो जाती हैं, हृदय रोग की संभावना बढ़ जाती है।

मद्यपान लीवर, फुप्फुस आदि को प्रभावित करता है। तम्बाकू में निकोटिन नाम का विषैला पदार्थ है। जो व्यक्ति बीड़ी-सिगरेट पीता है, जर्दा-युक्त पान-पराग खाता है, उसके शरीर के रक्त में वह निकोटिन मिश्रित हो जाता है। इससे रक्तवाहिनियां संकुचित होती हैं, हृदय-रोग, कैंसर आदि की संभावना बढ़ जाती है।

द्यूत आदि व्यसन भी आर्त्तध्यान के बहुत बड़े कारण बनते हैं इसलिए मानसिक शान्ति और प्रसन्नता चाहने वाले व्यक्ति के लिए द्यूत अभिशाप है। उससे बचना बहुत आवश्यक है।

आहार शुद्धि और व्यसन-मुक्ति के फलित हैं—

१. स्वस्थ और संतुलित जीवन।

२. शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्वास्थ्य में वृद्धि।

३. अपराधी मनोवृत्ति से बचाव।

साधर्मिक वात्सल्य

सामाजिक संगठन के अनेक कारक हैं। जाति के आधार पर एक संगठन बनता है, एक जाति के लोगों की एक बिरादरी बन जाती है। धर्म के आधार पर भी संगठन बनता है। एक धर्म में आस्था रखने वाले लोगों में भी भाईचारे की भावना पैदा हो जाती है। इसी भावना को पुष्ट करने वाला सूत्र है—जो नमस्कार-मन्त्र का धारक है, वह मेरा परम बन्धु है।

साधर्मिक बन्धु धर्म में स्थिर रहे, यह स्थिरीकरण साधर्मिक वात्सल्य का एक महत्त्वपूर्ण आयाम है।

जो लोग जन्मना जैन नहीं हैं, वे कर्मणा जैन बन सकें, आहार-शुद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यसन-मुक्ति को स्वीकार कर सम्यक् आस्था के सहारे जीवन चला सकें। इस प्रकार की प्रेरणा साधर्मिक वात्सल्य का दूसरा आयाम है।

ज्ञान-दान (शिक्षा) औषध-दान (चिकित्सा) अन्न-दान (आजीविका) और अभय दान (आतंक मुक्त वातावरण)—साधर्मिक वात्सल्य के इस दान चतुष्टयात्मक व्यावहारिक प्रयोग ने दक्षिण भारत में जैनधर्म को जन-जन तक पहुंचाया था।

साधर्मिक वात्सल्य की जीवनशैली के फलित हैं—

१. जन-जन में अहिंसा के प्रति आकर्षण।

२. जातीय सद्भाव।

३. सांप्रदायिक सद्भाव।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनशैली के नौ सूत्र

इस दुनिया में सबसे ज्यादा मूल्यवान् है जीवन। और भी बहुत सारी वस्तुएं हैं, जिनका मूल्य है किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो सबसे अधिक मूल्य है जीवन का। जीवन के होने पर सब कुछ है। जीवन न हो तो कुछ भी नहीं है। जिसके होने पर अन्य सबका अस्तित्व सामने आता है, उसका मूल्य कितना हो सकता है, इसको हर कोई समझ सकता है।

जीवन का लक्ष्य

व्यक्ति का सारा प्रभाव उसकी जीवनशैली पर निर्भर है। प्रश्न है—वह जीता कैसे है ? जीना एक बात है और कैसे जीना, बिल्कुल दूसरी बात है। यदि वह कलात्मक ढंग से जीता है तो जीवन बहुत सार्थक और सफल बन जाता है। यदि वह जीवन को जीना नहीं जानता, जीने की कला को नहीं जानता तो जीवन नीरस, बोझिल और निरर्थक जैसा प्रतीत होने लग जाता है। इसलिए आवश्यक है जीवनशैली का ज्ञान। वर्तमान की जीवन शैली अच्छी नहीं मानी जा रही है। इसके कई कारण हैं। भाग-दौड़, स्पर्धा, उतावली, हड़बड़ी आदि-आदि ऐसे तत्त्व जीवन में समा गये हैं, जो जीवन को सार्थक नहीं बना रहे हैं। शरीर स्वस्थ रहे, यह जीवन का एक लक्ष्य है। दूसरा लक्ष्य है—मन स्वस्थ रहे, प्रसन्न रहे। तीसरा लक्ष्य है—भावनाएं स्वस्थ रहें, निर्मल रहें। निषेधात्मक विचार न आएं, विधायकभाव निरंतर बने रहें, मैत्री और करुणा का विकास होता रहे। ये सब जीवन के उद्यान को हरा-भरा बनाने के लिए जरूरी हैं।

समाधान है वीतरागता

आज चारों ओर से एक स्वर सुनाई दे रहा है—वर्तमान की जीवनशैली अच्छी नहीं है, उसमें परिवर्तन होना चाहिए, वह बदलनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य तुलसी ने भी इस स्वर को सुना, युग की भावना और उसकी नब्ज को पहचाना, पकड़ा। उन्हें लगा कि सचमुच जीवनशैली बदलनी चाहिए। किन्तु जीवनशैली कैसे बदले ? यह एक बड़ा प्रश्न है। जैन धर्म की जो जीवनशैली है, वह वीतरागता की शैली है। इस रागात्मक दुनिया में, पदार्थ और धन के प्रति अत्यधिक आकर्षण वाली इस दुनिया में यदि कोई समाधान हो सकता है तो वह वीतरागता का समाधान है। वीतरागता की ओर जाने वाली जीवनशैली सचमुच एक समाधान है। इस सचाई को ध्यान में रख कर योगक्षेम वर्ष में जीवनशैली के नौ सूत्रों का निर्धारण किया गया। वह नौ सूत्रात्मक जीवनशैली वर्तमान की अनेक समस्याओं का समाधान देती है।

मृत्यु-सूत्र बन रही है रागात्मकता

जीवनशैली का पहला सूत्र है—सम्यक्दर्शन। मिथ्या दृष्टिकोण के कारण आज हिंसा बहुत बढ़ रही है, आतंक बढ़ा है, एक-दूसरे के प्रति संदेह बढ़ा है, विश्वास घटा है। ऐसा लगता है जीवन कहीं सुरक्षित ही नहीं है। ऐसा कोई स्थल, कोई आश्वासन आदमी खोज नहीं पा रहा है, जहां उसे सुरक्षा मिलती हो। उसका हेतु है—मिथ्या दृष्टिकोण। इस मिथ्या-दृष्टिकोण ने आदमी को इतना उलझा दिया है कि वह कोई निर्णय नहीं कर पा रहा है। राग संसारी प्राणी का एक जीवनसूत्र होता है, किन्तु जहां रागात्मकता सीमा पार कर जाती है, वहां वह जीवन-सूत्र न बनकर मृत्यु-सूत्र बन जाती है। आज ऐसा लगता है रागात्मकता मृत्यु का सूत्र बनती जा रही है, क्योंकि उसके सामने कोई प्रतिरोधात्मक शक्ति नहीं है। यदि कोई प्रतिरोधात्मक शक्ति हो सकती है तो वह है वीतरागता।

प्रवेश द्वार

सम्यक् दर्शन वीतरागता का प्रतीक है। हमारा लक्ष्य बने वीतरागता। हमारे लक्ष्य का प्रथम सूत्रधार है वीतरागता। हमारा पथदर्शन बने वीतरागता। हमारा धर्म बने वीतरागता। देव, गुरु और धर्म—यह एक त्रिपुटी है। एक वीतरागता का प्रतिपादन करने वाला, दूसरा वीतरागता का पथदर्शक और तीसरा वीतरागता का आचरण—यह सम्यक् दर्शन हमारी जीवनशैली का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अंग बने तो सचमुच रागात्मक प्रवृत्ति पर अंकुश लगेगा। रागात्मकता के प्रति जो अति आकर्षण बढ़ा है, चाहे वह जाति, धर्म, भाषा, प्रान्त आदि किसी भी संदर्भ में हो, उस पर एक अंकुश लगे तो निश्चय ही हमारी जीवनशैली एक शान्ति देने वाली, न्याय देने वाली, गरीब और अमीर के बीच की दीवार को मिटाने वाली शैली बनेगी। इस दृष्टि से प्रथम सूत्र बड़ा महत्त्वपूर्ण है। जीवनशैली का यहीं से प्रारंभ होता है। सम्यक् दर्शन प्रवेश द्वार है जैन जीवनशैली का। जिस व्यक्ति ने इस दरवाजे से प्रवेश किया है, उसके लिए आगे का रास्ता बहुत साफ है। उसके जीवन में सुख ही सुख होगा, उलझनें कम होंगी।

प्रश्न है संघर्ष का

जीवनशैली का दूसरा सूत्र है—अनेकान्त। अनेकान्त बहुत बड़ा दर्शन है। हम इस दर्शन को अपने जीवन की शैली बनाएं। पारिवारिक और सामुदायिक जीवन में अनेक व्यक्ति साथ होते हैं। ऐसे में रुचिभेद, विचारभेद, चिंतनभेद स्वाभाविक हैं। सब लोग एक रुचि वाले, एक विचार वाले और एक दृष्टि से सोचने वाले हों, यह संभव नहीं। जहां इस तरह के भेद हों, वहां टकराव और संघर्ष भी होंगे। इससे अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्रश्न है—क्या आदमी सदैव संघर्ष का ही जीवन जीयेगा ? सदा लड़ता-झगड़ता और मरता-मारता ही रहेगा ? नहीं, ऐसे जीवन को बदला जा सकता है अनेकान्त की जीवनशैली के द्वारा।

सह अस्तित्व

हम निश्चित मानें—जहां अनेक हैं, वहां सहअस्तित्व भी है। साथ में रहना है, साथ में जीना है। विरोध है, किन्तु विरोध नहीं भी है, सहअस्तित्व के बीज भी उस भूमि में बोये हुए हैं। हम उन सहअस्तित्व के बीजों को अंकुरित करने का प्रयत्न करें। सहअस्तित्व के लिए आवश्यक है—एक-दूसरे की भावना को समझें, एक-दूसरे के विचारों का मूल्यांकन करें। मैं अपने विचारों को सत्य मानता हूं, दूसरा अपने विचारों को सत्य मानता है। झगड़ा तब शुरू होता है, जब दूसरे के विचारों को असत्य बताया जाने लगता है। अनेकान्त ने पथदर्शन किया—'तुम अपने विचारों को सत्य मानो,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किन्तु दूसरे के विचारों में भी सचाई खोजने का प्रयत्न करो।' यदि यह मार्ग उपलब्ध होता है, तो सह अस्तित्व की आधार-भूमि निर्मित हो जाती है। हर व्यक्ति अपने विचारों को जैसे सत्य मानता है, दूसरों के विचारों को भी वैसे ही सत्य मानने लगे तो झगड़ा शान्त होगा, संघर्ष टल जायेगा।

अनेकान्त ने एक सूत्र दिया—समन्वय करो। भिन्न-भिन्न विचारों और मान्यताओं में कितना समन्वय हो सकता है और समन्वय के किन-किन सूत्रों को खोजा जा सकता है, यह चिंतन की बात है।

सापेक्षता

अनेकान्त का एक सूत्र है—सापेक्षता। तुम्हारा जीवन सापेक्ष है। तुम निरपेक्ष नहीं हो। हर व्यक्ति दूसरों की अपेक्षा रखता है। एक आदमी रोटी खाता है। इसके पीछे कितनों का श्रम जुड़ा है। कोई बीज बोता है, कोई फसल तैयार करता है, कोई उसकी कटाई करता है, कोई उसके प्रतिफल को बाजार में लाता है, कोई उस अनाज की पिसाई करता है, कोई उसकी रोटी बनाता है, तब उसे कोई खाता है। कितने-कितने लोगों का श्रम जुड़ता है, तब कहीं रोटी आदमी के मुंह तक आती है। हमारा पूरा जीवन सापेक्ष है। बड़ा हो या छोटा, सापेक्षता से कोई अलग नहीं हो सकता। यदि आदमी निरपेक्ष होकर बैठ जाए तो उसके लिए जीना मुश्किल हो जायेगा। व्यक्ति की सभी आवश्यकताओं पर विचार करें तो हजारों का श्रम जुड़ता है, तब कहीं जाकर उसकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। इतना सापेक्ष है जीवन। इस अवस्था में झूठा अहंकार कर व्यक्ति स्वयं को निरपेक्ष मानता है और यह निरपेक्ष दृष्टिकोण ही झंझट और कलह पैदा करता है।

अनेकान्त की जीवनशैली एक विनम्र जीवनशैली है। उसमें सापेक्षता है, समन्वय है, सहअस्तित्व है। ये सारे सूत्र जहां काम करते हैं, वहां एक सार्थक जीवन होता है। यह सूत्र हमारे सामने जीवन की सार्थकता को प्रस्तुत करता है, जीवन को आनंदमय बना देता है।

अनावश्यक हिंसा न करे

जीवनशैली का तीसरा सूत्र है—अहिंसा। न मारना अहिंसा है, किन्तु यह अहिंसा की समग्र परिभाषा नहीं है। अहिंसा की पृष्ठभूमि में दया, करुणा,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैत्री तथा समत्व की अनुभूति है, आत्मा की अनुभूति है। जो व्यक्ति आत्मिक धरातल पर नहीं जीता, आत्मा की अनुभूति नहीं करता, वह अहिंसा का आचरण नहीं कर सकता। मैं अहिंसा के शिखर को छूने की बात नहीं कर रहा हूं, किन्तु एक बहुत व्यावहारिक बात कर रहा हूं। सामाजिक जीवन में न्यूनतम इतनी अहिंसा तो होनी ही चाहिए और वह है अनावश्यक हिंसा का परित्याग। एक सामाजिक प्राणी जीता है। उसके जीने में कुछ अनिवार्य हिंसा होती है। हम इसे अस्वीकार नहीं करेंगे, हिंसा का हम समर्थन भी नहीं करेंगे किन्तु इस सचाई को स्वीकार करके चलें कि अनिवार्य हिंसा होती है। जो व्यक्ति अहिंसा के क्षेत्र में प्रविष्ट होना चाहता है, सामाजिक जीवन में अहिंसा का मूल्य आंकता है, अहिंसक समाज की दिशा में प्रस्थान करना चाहता है और यह चाहता है कि समाज हिंसा, अराजकता और आतंक का अखाड़ा न बने, उसके लिए एक न्यूनतम आचार-संहिता है कि वह अनावश्यक हिंसा न करे।

पहला परिणाम

अनावश्यक हिंसा से बचने का सबसे पहला परिणाम होता है—पर्यावरण के प्रदूषण की समाप्ति। आज पर्यावरण का जो प्रदूषण बढ़ा है, उसमें अनावश्यक हिंसा का बहुत बड़ा हाथ है। कितना पानी का अपव्यय, कितने जंगलों की कटाई, कितने पशु-पक्षियों का निर्ममता से शिकार, कितनी वनस्पतियों का विनाश, कितनी अनावश्यक भूमि का खनन और दोहन—यह सब अपने स्वार्थ के लिए इतनी मात्रा में हो रहा है कि वातावरण तेजी से प्रदूषित होता जा रहा है। यदि अनावश्यक हिंसा टल जाए तो पृथ्वी पर शान्ति कायम हो जाए, आदमी भी खुशहाल हो जाए।

आवश्यक है संवेदनशीलता

अहिंसा के लिए आवश्यक है—संवेदनशीलता। दूसरों को कष्ट देते समय यह अनुभूति हो कि यह कष्ट मैं दूसरों को नहीं, स्वयं को दे रहा हूं। यही संवेदनशीलता है। जिस समाज में संवेदनशीलता नहीं होती, वह समाज अपराधियों, हत्यारों या क्रूरता के खेल खेलने वालों का समाज बन जाता है। उसे सभ्य और शिष्ट समाज नहीं कहा जा सकता। इसलिए आवश्यक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है कि समाज में संवेदनशीलता का विकास हो।

संदेह के कारण आज परस्पर शत्रुता का वातावरण बन रहा है। आदमी-आदमी के बीच, एक राष्ट्र और दूसरे राष्ट्र के बीच संदेह की खाई निरंतर चौड़ी होती जा रही है। मैत्री का विकास हो, संदेह मिटे, यह आवश्यक है। मैत्री की भावना उदात्त होती है तो अपने आप एक नये वातावरण की सृष्टि होती है, जीवन सुखद बनता है।

पवित्र त्रिपथगा

जीवनशैली का चौथा सूत्र है—समण संस्कृति। समण प्रतीक है समानता का। समण प्रतीक है—उपशम और शान्ति का, समण प्रतीक है तपस्या, श्रम और पुरुषार्थ का। समण संस्कृति ने एक त्रिपथगा प्रवाहित की थी। यह भारत की एक पवित्र गंगा है, जिसने तीन पथों में विकास किया था, जिसके तीन आयाम बने थे।

समानता न केवल मनुष्य के प्रति, किन्तु प्राणीमात्र के प्रति। जब तक प्राणीमात्र को समानता की दृष्टि से नहीं देखेगा, मनुष्य स्वयं को दूसरे के समान नहीं देख पायेगा। प्राणीमात्र के प्रति समत्व का भाव जागेगा, तभी हिंसा कम होगी। समण संस्कृति में हिंसा के अल्पीकरण और अहिंसा के विकास की दिशा में जो प्रस्थान किया था, उसका पहला सूत्र बनता है—समानता।

समण संस्कृति ने दूसरा सूत्र दिया—उपशम या शान्ति का। कषाय शान्त हो, निषेधात्मक भाव न जागे, क्रोध, मान, माया और लोभ का अल्पीकरण हो, तभी शान्ति संभव है। यह शान्ति का सूत्र समण संस्कृति ने विकसित किया था।

समण संस्कृति ने तीसरा सूत्र दिया—श्रमशीलता। तपस्या करना, स्वावलंबन, अपने श्रम पर भरोसा करना, यह श्रम की जीवनशैली है।

श्रम-परांगमुखता का निदर्शन

आज आदमी श्रम से जी चुरा रहा है इसीलिए समस्याएं भी पैदा हो रही हैं। वह स्वयं को बड़ा आदमी मान कर श्रम से कतराता है। काम करने के लिए नौकर हैं, फिर हमें काम करने की क्या जरूरत है ? इतना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रमपरांगमुख जीवन बन गया है आज के आदमी का।

एक आदमी सेठ के घर गया। बोला—'सेठ साहब, बर्तन चाहिए।'

'क्यों ?

'कल शादी है।'

सेठ ने इधर-उधर देखकर उत्तर दिया—'अभी नहीं। अभी यहां कोई आदमी नहीं है।'

कुछ देर बाद वह आदमी फिर लौटकर आया। बोला—'सेठ साहब, बहुत जरूरी है। बर्तन देने की कृपा करें।'

सेठ ने फिर इधर-उधर देखकर वही उत्तर दिया—'अभी कोई आदमी नहीं है।'

उस आदमी से रहा नहीं गया। तत्काल बोल उठा—'मैं तो आपको आदमी समझकर ही आया था।'

तब कितनी दयनीय दशा बन जाती है, जब आदमी अपने आपको आदमी न माने और अपने कर्मचारी को आदमी माने। समण संस्कृति ने श्रम का सूत्र देते हुए कहा—'स्वयं पुरुषार्थ करो, अपने भरोसे पर जीने की आदत डालो।'

समानता, उपशम और स्वावलंबन—इन तीन सूत्रों को एक शब्द में कहा गया—हमारी जीवनशैली समण संस्कृति की जीवनशैली बने, वह विषमता की जीवनशैली न बने, आवेश और उत्तेजना की जीवनशैली न बने, परावलंबन और निठल्लेपन की जीवनशैली न बने।

इच्छा की अति

अनेकान्त, अहिंसा और समण संस्कृति—इन तीनों को मिलाकर जो जीवन-शैली का सूत्र बनता है, नवनीत के रूप में, निचोड़ के रूप में हमारे सामने आता है—वह है इच्छा परिमाण। यह जीवनशैली का पांचवां सूत्र है। विषमता पैदा करती है इच्छा की अति, श्रम परांगमुखता पैदा करती है इच्छा की अति और उत्तेजना पैदा करती है इच्छा की अति। वह हिंसा को जन्म देती है और अनेकान्त की जीवनशैली को विकसित नहीं होने देती। इस अति इच्छा ने जीवन को बहुत असंतुलित कर दिया है। इच्छा परिमाण जीवनशैली का एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है। हम इच्छा का परिमाण करें। आखिर कहीं तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदमी को रुकना होगा। कितना चलेगा वह ? सम्राट् ने प्रसन्न होकर कहा—'जितनी दूर चल सको, उतनी भूमि तुम्हें मिल जायेगी।' वह दिन भर बेतहासा भागता रहा। जब शाम को रुका तो फिर खड़ा नहीं रह सका, गिर पड़ा और मर गया।

इच्छा की अति मृत्यु की जीवनशैली है। इच्छा पर अंकुश लगाना, उसका परिमाण करना, वैयक्तिक स्वास्थ्य का लक्षण है, सामाजिक स्वास्थ्य का लक्षण है। इच्छा के परिमाण का तात्पर्य यह नहीं है कि गृहस्थ भिखारी बन जाये, रोटी मांगकर खाये। यह एक गृहस्थ आदमी के लिए शोभा नहीं देता। इच्छा के अनुसार वह अपना जीवनयापन करता है, किन्तु इतनी इच्छा न हो कि वह सबको निगलना चाहे और सारी संपदा को अपने पास ही देखना चाहे।

समाधान है विसर्जन

इच्छा की एक अति का समाधान है—विसर्जन। पूज्य गुरुदेव ने केरल की यात्रा में विसर्जन का सूत्र दिया था। यह एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है गृहस्थ के लिए, सामाजिक प्राणी के लिए। संग्रह और परिग्रह से उपजी विसंगतियों को मिटाने के लिए एक जीवन्त सूत्र है—विसर्जन। अर्जन के साथ विसर्जन भी हो। ऐसा होता है तो फिर इच्छा पर अंकुश लग जायेगा।

समाज को बनाता और बिगाड़ता है आर्थिक ढांचा। अर्थशास्त्रियों, समाजशास्त्रियों और राजनेताओं ने इस सचाई को अनेक बार प्रतिपादित किया है—अर्थ के आधार पर समाज बनता और बिगड़ता है। एक बहुत बड़ी सचाई है इस बात में। आज तो यह देखकर आश्चर्य होता है कि समाजवाद और साम्यवाद की बात करने वाले भी इच्छा परिमाण की बात को स्वीकार नहीं कर रहे हैं, व्यक्तिगत स्वामित्व को सीमित नहीं किया जा रहा है। जहां व्यक्तिगत स्वामित्व असीम होगा, इच्छा अनंत होगी, उस पर कोई नियंत्रण नहीं होगा, वहां समाज कभी स्वस्थ नहीं रहेगा। इस संदर्भ में आध्यात्मिक दृष्टि से, सामाजिक और व्यावहारिक दृष्टि से इच्छा के परिमाण का सूत्र बहुत महत्त्वपूर्ण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आजीविका सम्यक् बने

जीवनशैली का छठां सूत्र है—सम्यक् आजीविका। जीविका एक सामाजिक प्राणी के लिए आवश्यक है। जीवन निर्वाह के लिए आदमी कोई न कोई धंधा, व्यवसाय, व्यापार करेगा। किन्तु जरूरी है कि आजीविका असम्यक् न हो। इस पर ध्यान देना उतना ही आवश्यक है, जितना आजीविका पर। मांस का व्यापार, अंडों का व्यापार, मदिरा का व्यापार ऐसे व्यापार हैं, जो आजीविका को सम्यक् नहीं रहने देते। जैन जीवनशैली को समझने वाला व्यक्ति इन व्यवसायों से हमेशा अपने आपको बचाना चाहेगा। ऐसे व्यवसाय, जिनसे समाज में अपराध बढ़ते हैं, क्रूरता बढ़ती है, लूट-खसोट बढ़ती है, सम्यक् आजीविका के साधन नहीं बनते। इसलिए आजीविका के प्रश्न पर विचार करना जरूरी है।

सम्यक् आजीविका का सबसे बड़ा शत्रु है—तस्करी। शस्त्रों का व्यापार आज शायद हिंसा और आतंक को बढ़ाने में सबसे बड़ा हेतु बन रहा है। यदि शस्त्रों की खुली छूट न हो, इनकी बिक्री पर प्रतिबंध हो तो अपने आप ही आतंक कम होता है। सरेआम शस्त्रों का प्रदर्शन होते देख आम आदमी के मन में भी इनके प्रति आकर्षण जागता है और चाहे-अनचाहे वह हिंसा की दिशा में अग्रसर होता है। विकसित राष्ट्रों में वहां के स्कूलों में विद्यार्थी शस्त्रों से लैस होकर कक्षाओं में जाते हैं। जहां ऐसी मानसिकता और ऐसी स्थिति है, वहां अहिंसा की बात कैसे स्थापित हो सकती है ? जहां सामान्य वाद-विवाद में भी गोली और बम का इस्तेमाल होने लग गया हो, वहां अहिंसा की बात ही बेमानी हो जाती है। इस स्थिति में सम्यक् आजीविका का सूत्र बहुत आवश्यक है।

जीवन की नींव है संस्कार

जीवनशैली का सातवां सूत्र है—संस्कार। आदमी संस्कारों के आधार पर जीवन जीता है। जैसा संस्कार, वैसा व्यवहार। प्रारंभ से ही अच्छे संस्कार मिलते हैं तो जीवन अच्छा बनता है। एक तोते को अच्छा संस्कार मिला था इसलिए उसने राजा का स्वागत किया। दूसरे तोते को बुरे संस्कार मिले थे इसलिए राजा को देखते ही वह बोला पड़ा—'आओ, मारो, काटो, लूटो।' राजा ने पहले तोते से पूछा—दोनों के स्वभाव में इतनी भिन्नता का कारण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्या है ? उसने बताया—'हम दोनों सगे भाई हैं। मैं एक ऋषि के आश्रम में पला-बढ़ा, वहां के संस्कार सीखे। मेरा भाई चोरों के पास रहा, उसने उन्हीं के संस्कार और भाषा सीखी।'

जीवन की नींव ही संस्कारों पर आधारित होती है। जैन जीवनशैली में कुछ संस्कार निर्धारित किये गये हैं, जैसे—अभिवादन में जयजिनेन्द्र का प्रयोग। इस अभिवादन में 'वीतराग की जय' की भावना परिलक्षित होती है। घर की साज-सज्जा और वातावरण हमें निरंतर इस बात की प्रेरणा देने वाला होना चाहिए कि हमें वीतरागता की दिशा में प्रस्थित होना है। वीतरागता हमारा लक्ष्य है। कुल मिलाकर हमारे संस्कार वीतरागोन्मुखी होने चाहिए। संस्कारों की फिसलन बहुत है, राग की ओर ले जाने वाले घटक बहुत हैं, किन्तु वीतरागता की ओर जाने की प्रवृत्ति बने तो हमारी जीवनशैली अधिक प्रभावी बनेगी।

शाकाहार

जीवनशैली का आठवां सूत्र है—आहारशुद्धि और व्यसनमुक्ति। आहार अध्यात्म का पुराना विषय भी है और नया विषय भी। पुराना इसलिए कि धर्मशास्त्रों में आहारशुद्धि पर बहुत बल दिया गया है। नया इस अर्थ में कि आज विज्ञान आहार के संबंध में बहुत सारी नयी बातें हमारे सामने प्रस्तुत कर रहा है।

हमारे आहार से आचार, विचार और व्यवहार का बहुत निकट का संबंध है, इसलिए आहार पर ध्यान देना बहुत आवश्यक है। ऐसा आहार न हो, जो उत्तेजना बढ़ाए, संस्कारों में विकृति लाये। मांस वर्जनीय इसीलिए है कि पशु के संस्कार मांस के साथ आदमी में आते हैं। जिसका मांस खाया जाता है, उसके संस्कार उसमें संचित रहते हैं। फिर पशु का मांस खाने वाला पाशविक संस्कारों से कैसे बच सकता है ? उसमें पशुता जागृत हो जाने की बहुत संभावना है। हमारे मस्तिष्क में पशु के मस्तिष्क की भी एक परत है। मांस खाते रहने से वह सक्रिय हो जाती है और मांस खाने को प्रेरित करती रहती है। स्वास्थ्य के लिए भी शाकाहार ही सबसे ज्यादा अनुकूल माना गया है। आहारशुद्धि पर ध्यान देने वाला सबसे पहले इस बात पर ध्यान केन्द्रित करेगा कि आहार इतना शुद्ध हो कि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उसमें विकृति पैदा करने वाले तत्त्वों का समावेश न हो।

आहार और व्यसन

व्यसनमुक्ति और आहार का भी गहरा संबंध है, क्योंकि आहार भी आदमी को व्यसन की ओर ले जाने वाला होता है। आहार शुद्ध होता है तो व्यसनों से मुक्त होना सरल बन जाता है। जुआ खेलना, शराब पीना, चोरी करना—ये सारे व्यसन हैं और इन्हें प्रेरणा मिलती है आहार की अशुद्धि से। पुरानी कथा है—एक मुनि को एक दिन विकृत आहार मिल गया। परिणामस्वरूप उसने एक सेठ के घर से हार चुरा लिया। जंगल में जाने के बाद उसे वमन हुई, सारा भोजन निकल गया। वमन होते ही चेतना लौटी, अपने कृत्य का भान हुआ। उसने सेठ को हार वापस दे दिया। आहार विकृति के कितने बुरे परिणाम होते हैं, इसका पता हमें तब चलेगा, जब अपने शरीर और मन पर सूक्ष्मता से ध्यान देंगे।

व्यापक दायरा है साधार्मिक वात्सल्य का

जीवनशैली का नौवां सूत्र है—साधर्मिक वात्सल्य। अपने समान धर्म वाले व्यक्ति के प्रति वात्सल्य हो, बंधुत्व की भावना हो। कहा गया—'जो णमुक्कारधारओ, सो मे परम बंधवो।' जो नमस्कार महामंत्र का जप करने वाला है, वह मेरा परम बंधु है। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि दूसरा कोई हमारा बंधु नहीं है। किन्तु समानधर्मी व्यक्ति के लिए जो भावना होती है, उसे आगे बढ़ाने के लिए जो एक लक्ष्य बनता है, वह बहुत काम का है। दूसरे के प्रति अवज्ञा और उपेक्षा की बात नहीं है, किन्तु समानधर्मिता की जो स्फुरणा है, उसके प्रति वत्सलता का भाव, उसे आगे बढ़ाने का भाव, उसे सहारा देने का भाव, धर्म में स्थिरीकरण में सहयोग, उसके साथ आत्मीयता की एक अनुभूति—आदि-आदि बातें साधर्मिक वात्सल्य के अन्तर्गत आती हैं। पूज्य गुरुदेव ने कर्मणा जैन बनाने की प्रेरणा दी। उसके मूल में यह साधर्मिक वात्सल्य की ही भावना निहित है। कर्म से भी जो जैन है, वह भी मेरा अपना भाई है। इस तरह एक बहुत व्यापक दायरा बनता है साधर्मिक वात्सल्य का। हम इस सूत्र पर भी विचार करें—किस प्रकार हमारी साधर्मिकता पुष्ट हो सकती है ? हम कैसे एक-दूसरे के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहयोगी और सहारे बन सकते हैं ?

जीवनशैली के ये नौ सूत्र हैं। मैं मानता हूं—जैन शब्द को इसमें से निकाल दें तो ये जीवनशैली के सूत्र बन जाते हैं। इसके साथ जैन शब्द इसलिए रखा गया है कि जैन धर्म ने जीवनशैली के कुछ महत्त्वपूर्ण सूत्र हमें सुझाए हैं। जैन शब्द इसीलिए उनका वाचक बनता है, अन्यथा ये नौ सूत्र जीवनशैली के सूत्र हैं, जो सभी के लिए समान रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। हमें इन सूत्रों पर चिंतन, मनन और अनुशीलन करना है, उन्हें जीवन-व्यवहार में उतारना है। जो व्यक्ति इनके आधार पर अपनी जीवनशैली निर्मित करेगा, वह स्वयं सुखी और स्वस्थ जीवन जीयेगा, परिवार समाज के लिए भी सुख का मार्ग प्रशस्त करेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जीवनशैली और स्वास्थ्य

अध्यात्म और विज्ञान के बीच भेदरेखा खींचना एकांगी दृष्टिकोण का परिणाम है। ये दोनों सत्य की खोज के दो आयाम हैं। सत्य की खोज में सबसे बड़ी बाधा है एकांगी दृष्टिकोण। महावीर ने कहा—अनेकान्त का दृष्टिकोण अपनाए बिना सत्य-शोध की दिशा में हम बहुत आगे नहीं बढ़ सकते।

अनेकान्त के दो पहलू

अनेकान्त के दो पहलू हैं—निश्चयनय और व्यवहारनय। अस्तित्व के खोज की पद्धति का नाम निश्चय नय है। अस्तित्व के परिवर्तनशील रूपों की खोज की पद्धति का नाम व्यवहारनय है। द्रव्य की समग्रता अस्तित्व और उसके परिवर्तनशील रूप—दोनों के समन्वय से ही जानी जा सकती है। आचारांग सूत्र का एक सूक्त है—जो एक को जानता है, वह सबको जानता है। जो सबको जानता है, वह एक को जानता है—

ये एगं जाणई से सव्वं जाणई।
ये सव्वं जाणई से एगं जाणई॥

अध्यात्म की खोज भौतिक पदार्थ की खोज किये बिना अधूरी रहेगी। इसी प्रकार भौतिक पदार्थ की खोज अध्यात्म की खोज के बिना अधूरी रहेगी। एक भौतिकविज्ञानी को यदि एक परमाणु का सर्वथा ज्ञान करना है तो वह आत्मा या चेतना को जाने बिना उसे सर्वथा नहीं जान सकता। ठीक इसी प्रकार आत्मविज्ञानी भौतिक पदार्थ को जाने बिना आत्मा को सर्वथा नहीं जान सकता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अनेकांत दृष्टि की समर्थता

द्वैतवादी दार्शनिकों ने चेतन और अचेतन—दोनों के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया। उन्होंने केवल आत्मा की खोज नहीं की, पदार्थ की भी खोज की, चेतन और अचेतन—दोनों के सम्बन्ध की भी खोज की। इसलिए पूर्ण सत्य को समझाने वाली हमारी भाषा होगी—जहां हम अध्यात्म-विज्ञान का प्रयोग करते हैं, वहां भौतिक-विज्ञान उसी की पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है और जहां हम भौतिक-विज्ञान का प्रयोग करते हैं, वहां अध्यात्म-विज्ञान उसकी पृष्ठभूमि में छिपा हुआ है। दोनों को एक साथ नहीं कहा जा सकता, यह हमारी वाणी की असमर्थता है। दोनों को सर्वथा पृथक् नहीं किया जा सकता, यह अनेकान्त दृष्टि की समर्थता है। अद्वैतवादी दार्शनिकों ने भी द्वैत को सर्वथा नकारा नहीं। चेतन्याद्वैत को स्वीकार करने वाला वेदान्त भी पदार्थ को सर्वथा अस्वीकार नहीं करता। जड़ाद्वैतवादी चार्वाक् भी चेतना को सर्वथा अस्वीकार नहीं करता।

शोध की परंपरा को आगे बढ़ाएं

केवल अध्यात्म-विज्ञान और केवल भौतिक-विज्ञान के आधार पर जीवन की व्याख्या नहीं की जा सकती। **अप्पणा सच्चमेसेज्जा**—यह महामंत्र है सत्य की खोज का। दूसरों द्वारा खोजे हुए सत्यों अथवा नियमों का उपयोग करना मनीषा की परंपरा है। किन्तु स्वयं सत्य की खोज किये बिना दूसरों द्वारा खोजा हुआ सत्य हृदयंगम नहीं होता। हम दूसरों द्वारा खोजे हुए सत्य पर विराम न लगाएं। अपने द्वारा खोजा हुआ सत्य उसके साथ जोड़कर सत्य शोध की परंपरा को आगे बढ़ाएं

जीवन एक सचाई है। उसे हर मनीषी ने समझ की आंख से देखा है। फिर भी समग्रता से उसकी व्याख्या नहीं हुई। आज भी हमारे लिए शेष है कि हम जीवन की सचाई को अपनी-अपनी आंख से देखें, उसकी व्याख्या को अधिक विशद बनाएं।

नवांगी जीवन

जीवन के घटक तत्त्व नौ हैं—

१. ओज आहार—जीवन के प्रथम क्षण में होने वाली पौद्गलिक संघटना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२. शरीर	६. मन
३. इन्द्रिय	७. प्राण
४. श्वास	८. चित्त
५. भाषा	९. भाव

इस नवांगी जीवन के पदार्थ को समझे बिना जीवनशैली के यथार्थ को समझा नहीं जा सकता।

प्रवर और अवर

जीवनशैली को प्रवर और अवर मानने का आधार यथार्थ है। शारीरिक स्वास्थ्य, ऐन्द्रिय स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ्य और भावात्मक स्वास्थ्य को पोषण देने वाली जीवनशैली प्रवर है। जिस जीवनशैली से सर्वांगीण स्वास्थ्य की हानि होती है, वह जीवनशैली अच्छी नहीं है। व्याख्या का अग्रिम चरण यह है —जो जीवनशैली श्वास को दीर्घ और प्राण ऊर्जा की वृद्धि करती है, वह प्रवर है। जिससे श्वास छोटा और प्राण ऊर्जा क्षीण होती है, वह जीवनशैली अवर है। चित्त को प्रसन्न रखने वाली जीवनशैली प्रवर है तथा चेतना को अवसाद और विषाद की स्थिति में ले जाने वाली जीवनशैली अवर है।

भाषा को हम मन से पृथक् नहीं कर सकते। मन की सारी गतिविधि भाषा के माध्यम से होती है। कर्मसंस्कार का आशय चित्त से जुड़ा हुआ है। वह हमारे बाहरी और भीतरी—दोनों व्यक्तित्वों का निर्धारक तत्त्व है।

स्वास्थ्य का मूल आधार

शरीरविज्ञान की दृष्टि से स्वास्थ्य का मौलिक आधार है नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र। अध्यात्म की दृष्टि से स्वास्थ्य का मौलिक आधार है प्राणऊर्जा का संतुलन। प्राण के तीन मुख्य प्रवाह हैं—

- चन्द्रस्वर
- सूर्य स्वर
- मध्य स्वर।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

योग की भाषा में इन्हें क्रमशः इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना कहा जाता हैं। चन्द्रस्वर का संबंध मानसिक क्रियाकलाप के साथ है। सूर्यस्वर का संबंध शारीरिक क्रियाकलाप के साथ है। मध्यस्वर का संबंध आंतरिक ऊर्जा के साथ है। चन्द्रस्वर और सूर्यस्वर का संबंध मस्तिष्क के दोनों पटलों से है। चन्द्रस्वर चलता है, तब मस्तिष्क का दायां पटल (राइट हेमिस्फियर) सक्रिय होता है। सूर्य स्वर चलता है तब बायां पटल (लेफ्ट हेमिस्फियर) सक्रिय होता है।

मस्तिष्कीय क्रियाशीलता और श्वसन क्रिया

'हेलीफेक्स विश्वविद्यालय (कनाडा) के डलहौजी मनोविज्ञान विभाग में गोलार्द्धों की क्रियाशीलता के अध्ययन के साथ अनुसंधानकर्ताओं ने नाक के दोनों नथुनों से चलने वाले नेशन साइकिल जैसे कि बायीं या दायीं नाड़ी से चलने वाली श्वास-प्रश्वास का भी अध्ययन किया। दायें बायें नक्षत्रों के क्रम से चलने वाली श्वसन क्रिया और मस्तिष्कीय गोलार्द्धों में बारी-बारी वाली क्रियाशीलता का घनिष्ट संबंध पाया गया। जो दाहिने नथुने से श्वसन होता रहता है तो बायें गोलार्द्ध में ई. ई. जी. द्वारा अधिक क्रियाशीलता देखी जा सकती है। इसका उल्टा भी सही है अर्थात् बायीं नाड़ी से श्वसन क्रिया होते समय दाहिने गोलार्द्ध में अधिक क्रियाशीलता परिलक्षित हुई।' (अखण्ड ज्योति मई १९८६)

हमारा सारा क्रियाकलाप मस्तिष्क के द्वारा संचालित है। अंतःस्रावी ग्रन्थियों के स्राव उसका प्रभावी सहायक है और उसका प्रभावी सहायक है चेतना। चेतना, ग्रन्थितंत्र और मस्तिष्क एवं पृष्ठरज्जु का समन्वित अध्ययन और प्रयोग न करें तो स्वास्थ्य की समस्या का समाधान नहीं कर सकते। यह शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की सचाई है। इसके साथ अध्यात्म की सचाई को और जोड़ें तो कहा जाएगा—चेतना, नाड़ीतंत्र और ग्रन्थितंत्र के साथ प्राण का अध्ययन किये बिना हम स्वास्थ्य के रहस्यों को समग्रतः नहीं समझ पाएंगे और जीवनशैली को स्वास्थ्यप्रद भी नहीं बना पाएंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्तमान जीवनशैली और समाज

बीसवीं शताब्दी संहारक अस्त्रों के निर्माण, जातीय एवं साम्प्रदायिक संघर्ष, अनावश्यक हिंसा, आतंकवाद, आर्थिक अपराध और पर्यावरण प्रदूषण के लिए प्रसिद्ध रही है। आज प्रत्येक चिन्तनशील व्यक्ति का मन आन्दोलित है कि उक्त समस्याओं का समाधान कैसे किया जाए ?नए समाज अथवा स्वस्थ समाज की संरचना कैसे संभव बने ? इक्कीसवीं शताब्दी सामने है। अस्वस्थ समाज के साथ उसमें प्रवेश करना शायद किसी को इष्ट नहीं है। अणुव्रत-अनुशास्ता श्री तुलसी ने ईस्वी सन् १९४५ में स्वस्थ समाज रचना का संकल्प प्रस्तुत किया था। उस संकल्प का जीवन-दर्शन है अणुव्रत। अणुव्रत का मूल तत्त्व है संयम। स्वस्थ व्यक्ति और स्वस्थ समाज रचना के लिए जिस जीवनशैली की जरूरत है, उसे हम एक शब्द में परिभाषित कर सकते हैं, वह है संयमाभिमुख जीवनशैली।

आहार का संयम नहीं है फलतः शारीरिक, मानसिक और भावात्मक स्वास्थ्य बिगड़ रहा है, हिंसा बढ़ रही है। हिंसा और साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के साथ शारीरिक क्रिया का गहरा संबंध है। यह सचाई वैज्ञानिक गवेषणाएं बता रही हैं। शारीरिक प्रवृत्तियों का संयम किए बिना क्या स्वस्थ समाज रचना का सपना साकार हो सकता है ? वाणी का असंयम भी संघर्ष के लिए कम जिम्मेवार नहीं है। अतः स्वस्थ व्यक्ति और स्वस्थ समाज रचना के लिए अपेक्षित जीवनशैली का आधार सूत्र है संयम।

इन्द्रिय का असंयम भी आर्थिक अपराध तथा अन्य अपराधों के लिए उत्तरदायी है। अध्यात्म ने हजारों-हजारों वर्ष पहले घोषणा की थी—'इन्द्रिय चेतना को कभी तृप्त नहीं किया जा सकता।' अतृप्ति और आसक्ति का चक्र अनेक जटिल समस्याओं का निर्माण कर रहा है।

समता

स्वस्थ समाज रचना की जीवनशैली का दूसरा आधार है समता। समता का अर्थ है संवेग संतुलन। गहन मनोविज्ञान (डेफ्ट साइकोलॉजी) और व्यवहार मनोविज्ञान (विहेवियर साइकोलॉजी) ने मानवीय चेतना के अध्ययन का प्रबल प्रयत्न किया है। यह आत्मा या चेतना के अध्ययन का आधुनिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आयाम है। मौलिक मनोवृत्तियों (इंस्टिवट) और संवेग के विश्लेषण ने आंतरिक चेतना के अनेक आवरण दूर किए हैं। जीन के सिद्धान्त ने जीवन की वृत्तियों को समझने का अवसर दिया है। इनके सन्दर्भ में कर्मवाद का तुलनात्मक अध्ययन स्वस्थ समाज की रचना में काफी उपयोगी हो सकता है।

सामाजिक और आर्थिक विषमता का मूल स्रोत है संवेगों का असंतुलन। अहंकार और ममकार ये दोनों संवेग विषमता के जनक हैं। क्रोध, माया, लोभ, भय, घृणा, काम-वासना आदि का अतिरेक विषमता के पोषक तत्त्व हैं। इस संवेग-समूह से प्रभावित जीवनशैली स्वस्थ समाज अथवा अहिंसक समाज की रचना कभी नहीं कर सकती। यदि समाजवादी और साम्यवादी शासन-पद्धति के साथ संवेग-संतुलन के प्रयोग जुड़े होते तो स्वस्थ समाज की रचना को दिशा मिल जाती।

संवेग संतुलन का प्रयोग

संयम और समता के सिद्धान्त संवेग संतुलन की साधना किए बिना जीवनव्यापी नहीं हो सकते। अध्यात्म के क्षेत्र में संवेग नियंत्रण के अनेक प्रयोग बतलाए गए हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि संवेग नियंत्रण के प्रयोगों का समुच्चय ही अध्यात्म है। संवेग नियंत्रण के लिए प्रेक्षाध्यान के प्रयोग बहुत सफल हुए हैं। उनके आधारभूत सूत्र हैं—

१. शारीरिक परिवर्तन
२. विरोधी संवेग का जागरण
३. यथार्थ दृष्टिकोण
४. आवेश के कारणों का निवारण।

मनुष्य के शरीर में दो नियंत्रण प्रणालियां हैं—

१. रासायनिक नियंत्रण प्रणाली
२. विद्युत् नियंत्रण प्रणाली।

रासायनिक नियंत्रण प्रणाली स्वतः चालित है। अंतःस्रावी ग्रन्थियां उसे संचालित करती हैं। अंतःस्रावी ग्रन्थियों का नियमन लिम्बिक सिस्टम के हाइपोथेलेमस से होता है। हम प्रेक्षाध्यान के प्रयोगों द्वारा हाइपोथेलेमस या भावधारा को प्रभावित कर सकें तो संवेग नियंत्रण की साधना आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बढ़ सकती है। विद्युत् नियंत्रण प्रणाली स्नायु संस्थान की विद्युत् शक्ति द्वारा शरीर को नियंत्रित करती है। उसे बुद्धि से अल्प मात्रा में और भावना से अधिक मात्रा में प्रभावित किया जा सकता है। अध्यात्म योग और ध्यान की पद्धति का समुचित प्रशिक्षण संवेग नियंत्रण और संवेग संतुलन की दिशा में काफी सफल हो सकता है।

अनासक्ति

स्वस्थ समाज संरचना की जीवनशैली का तीसरा आधार है अनासक्ति। आधुनिक अर्थशास्त्र ने आसक्ति की चेतना को बहुत उभारा। उससे भूख की समस्या का समाधान हुआ है, किन्तु आर्थिक अपराधों में वृद्धि हुई है। अमीरों की अमीरी अधिक बढ़ी है, गरीबों को उतनी सुविधा नहीं मिली है, जितनी अपेक्षित है।

आसक्ति को कम करने का ध्रुव सिद्धान्त है—धन सब कुछ नहीं है, वह जीवन यात्रा को चलाने का एक माध्यम है। उसके लिए चेतना के शेष आयामों पर पर्दा डाल देना समाज को रुग्ण बनाने का प्रयत्न है। अनासक्ति का जीवन में अवतरण सरल कार्य नहीं है। उसके लिए प्रशिक्षण और प्रयोग जरूरी हैं।

जीवनशैली की त्रिपदी

संयम, समता और अनासक्ति—यह स्वस्थ जीवनशैली की त्रिपदी है। स्वस्थ जीवनशैली से ही स्वस्थ समाज रचना का कार्य पूर्ण हो सकता है। अहिंसा और शान्ति इस जीवनशैली के फलित हैं। हम फलित को प्राप्त करना चाहते हैं, जीवनशैली को बदलना नहीं चाहते—किमाश्चर्यमतः परम्।

अध्यात्म और विज्ञान—दोनों एक ही सत्य के दो पक्ष हैं। वैज्ञानिक शोध का उद्देश्य था—मानवीय समस्याओं को सुलझाना किन्तु आज उसका व्यवसायीकरण हो गया इसलिए वह भय, आतंक और हिंसा का प्रतीक बनता जा रहा है। आध्यात्मिक चेतना को जागृत कर इस व्यावसायिक वृत्ति को कम किया जा सके तो जीवनशैली को बदलने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि आज या कल, हमें एक दिन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवश्य ही इस विषय पर गंभीर चिन्तन करना होगा, असंयम, विषमता और आसक्ति प्रधान जीवनशैली के सिंहासन पर संयम, समता और अनासक्ति की जीवनशैली को प्रतिष्ठित कर हम धन्यता का अनुभव करेंगे। 'जीवन शैली और स्वास्थ्य' विषय में जो सम्मेलन आयोजित हो रहा है, वह दृष्टिकोण को बदलने में हेतु बनेगा। इस संभावना को हम अपनी पूर्ण आस्था के साथ स्वीकृति दें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वास्थ्य : अध्यात्म और विज्ञान के संदर्भ में

संयुक्त राष्ट्र संघ इस वर्ष को 'सहिष्णुता वर्ष' के रूप में मना रहा है। पूरे विश्व को सहिष्णुता की जरूरत है। प्रश्न है—असहिष्णुता पैदा क्यों होती है ? हिंसा क्यों पैदा होती है ? अपराध क्यों बढ़ते हैं ? बहुत पहले सामान्यतः यह माना जाता रहा कि परिस्थिति और वातावरण इसके लिए उत्तरदायी हैं, किन्तु अब भीतर की ओर ध्यान गया है। अगर हम प्राचीन अध्यात्म के आचार्यों की बात छोड़ दें तो वर्तमान युग में जो मनोविज्ञान के आचार्य हुए हैं, उन्होंने भीतर जाने की दिशा सोची और उससे एक नया आयाम खुला। वह आयाम यह है कि केवल बाहर की ओर न देखें, भीतर की ओर भी देखें, भीतर की भी खोज करें। यह बाहर की खोज और भीतर की खोज का जो योग है, वास्तव में वही हमारी समस्या का समाधान है। केवल बाहर की ओर ही उलझे रहे तो समस्या का समाधान नहीं होगा।

अहम प्रश्न

आईंस्टीन से अंतिम समय में पूछा गया—'अगले जन्म में आप क्या करना चाहेंगे ?' उन्होंने उत्तर दिया—इस जन्म में मैंने ज्ञेय को खोजा, मेरा सारा विषय आब्जेक्ट रहा। अब मैं चाहता हूं कि अगले जन्म में मैं ज्ञाता को जानने का प्रयत्न करूं। आत्मा को जानूं, चैतन्य को जानूं, चैतन्य के रहस्यों को जानूं—यह मेरी अगले जन्म की इच्छा है।'

बहुत आवश्यक है यह, क्योंकि हम व्यक्ति का जीवन जी रहे हैं और साथ-साथ सामाजिक जीवन भी जी रहे हैं। जब तक समाज स्वस्थ नहीं होगा, समस्याएं पैदा होती रहेंगी। चाहे वे धर्मगुरु हों, राजनेता हों, चिकित्सा-विज्ञानी हों, शिक्षक हों—सबके सामने यह एक अहम प्रश्न है और इसके समाधान में सबका समन्वित योग होना चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आवश्यक है अध्यात्म और विज्ञान

स्वास्थ्य के विषय में मैं अध्यात्म की चर्चा करना चाहता हूं और साथ ही साथ विज्ञान की भी चर्चा करूंगा। मैं नहीं मानता कि अध्यात्म और विज्ञान दो हैं। मेरी दृष्टि में ये दो नहीं हैं, भिन्न नहीं हैं। सत्य की खोज चाहे हम अतीन्द्रिय चेतना के माध्यम से करें, चाहे वैज्ञानिक उपकरणों के द्वारा करें, सूक्ष्म की खोज विज्ञान के लिए भी अभीष्ट है और अध्यात्म को भी यह इष्ट है। यह अन्तर हो सकता है कि विज्ञान के सामने केवल भौतिक जगत् रहा। भौतिक विज्ञान के संदर्भ में इसका विकास हुआ। अध्यात्म के आचार्यों के सामने मुख्यतः आत्मा और चैतन्य रहे। उन्होंने इसी पर अधिक खोजें की, किन्तु कोई भी भौतिकविज्ञानी चेतना से हट कर कोई खोज नहीं कर सकता। केवल उपकरणों के द्वारा कोई सार्थक खोज नहीं हो सकती और कोई भी अध्यात्म का विज्ञानी केवल चैतन्य के आधार पर उन खोजों को आगे नहीं बढ़ा सकता। अध्यात्म के जो महान् आचार्य हुए हैं, उन्होंने अचेतन और जड़ पदार्थ की खोज भी की है। दोनों के बिना हमारा समन्वित व्यवहार नहीं चलता। इसलिए विज्ञान और अध्यात्म के बीच में कोई लक्ष्मण रेखा खींचना अभीष्ट नहीं होगा। यदि विज्ञान का व्यवसायीकरण हुआ है तो आज योग का भी व्यवसायीकरण हुआ है। ये दोनों बातें वांछनीय नहीं हैं। दोनों ही सत्य की खोज के लिए हैं इसलिए दोनों का योग बहुत आवश्यक है।

समाज में हिंसा कम हो, इस प्रश्न पर विचार करें तो जीवनशैली का प्रश्न प्रमुख रूप से हमारे सामने आता है। जीवनशैली के मूल तत्त्व हैं—समता, संयम, सहिष्णुता, अनासक्ति। इनके अभाव में अपराध, असंतुलन, विषमता और हिंसा बढ़ती है।

अध्यवसाय और लेश्या

अध्यात्म का एक शब्द है—अध्यवसाय। अध्यवसाय हमारा स्वस्थ नहीं होता है तो हमारी सारी शृंखला गड़बड़ा जाती है। विज्ञान की भाषा में हम इसे **डिसऑर्डर ऑफ प्राइमल ड्राइव्स** कह सकते हैं। जब प्राइमल ड्राइव्स का डिसऑर्डर होता है तब आगे की सारी शृंखला गड़बड़ा जाती है। अध्यवसाय के बाद का स्तर है लेश्या। प्रेक्षाध्यान में लेश्याध्यान का प्रयोग होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विज्ञान की भाषा में इसे डिसऑर्डर ऑफ साइकिक कलर कहा जा सकता है। जब साइकिक कलर या आभामण्डल का डिसऑर्डर होता है, तब अनेक समस्याएं पैदा होती हैं। पहले आभामण्डल के बारे में हमें कम जानकारियां थीं। प्राचीनकाल में कुछ जानकारियां थीं, किन्तु आज इसकी बहुत चर्चा है। आज आभामण्डल (ओरा) और भामण्डल (हेलो) पर काफी काम हो रहा है। आज आभामण्डल डाइग्नोसिस का भी एक प्रमुख साधन बन गया है। आभामण्डल का फोटो लिया जाता है और उस फोटो के आधार पर सही निदान होता है। हमारे जीवन का भी यह एक लक्षण बन गया है। यंत्र द्वारा हृदय की धड़कन, श्वास आदि की जांच होती है। जांच में सिद्ध हो जाने पर आदमी को मृत घोषित कर दिया जाता है। किन्तु आज यह कहा जा रहा है कि जब तक मस्तिष्क की कोशिकाएं सक्रिय हैं, तब तक आदमी मरता नहीं है। इससे भी आगे दो कदम बढ़कर कहा जा रहा है कि जब तक आभामण्डल जीवित हैं, तब तक आदमी मरता नहीं है। बहुत बार ऐसी घटनाएं घटती हैं कि मृत आदमी श्मशान में जाकर जीवत हो जाता है। लोग समझते हैं कि भूत बन गया। वस्तुतः वह भूत-प्रेत कुछ भी नहीं होता। एक गहरी मूर्च्छा होती है और वह टूट जाती है। कारण एक ही है कि आभामण्डल मरा नहीं। मृत्यु की अंतिम कसौटी हो गयी है आभामण्डल। हमारा साइकिक कलर अव्यवस्थित होता है तो स्वास्थ्य की स्थिति गड़बड़ा जाती है।

भावधारा

इससे आगे बढ़ें। तीसरी अवस्था है—भावधारा—डिसऑर्डर ऑफ इमोशन। जब इमोशन का रूप अव्यवस्थित बनता है, तब सारी अव्यवस्थाएं एक साथ आगे की ओर बढ़ती हैं। जब यह भावधारा अव्यवस्थित होती है तब उससे हमारी प्राणऊर्जा प्रभावित होती है। प्राणऊर्जा के अव्यवस्थित होने पर नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र प्रभावित होता है। उनके प्रभावित होने से शरीर का पूरा सिस्टम ही गड़बड़ा जाता है। आज वैज्ञानिक खोजों से यह अच्छी तरह प्रमाणित होता जा रहा है कि हिंसा, सांप्रदायिकता की मनोवृत्ति केवल बाहर से ही नहीं, हमारे भीतर से भी आती है। भीतर में जिस तरह का भाव पैदा होता है, उससे हमारे रासायनिक परिवर्तन होते हैं। जब हमारे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शरीर की रासायनिक प्रक्रिया गड़बड़ाती है तब हमारी प्रवृत्ति हिंसा की ओर मुड़ती है।

कारण की खोज

हमें हिंसा के मार्ग को खोजना है। उसका रूट क्या है ? मूल कारण या उपादान क्या है ? हम जब तक कारण की खोज नहीं करेंगे, समाज में बढ़ती हुई हिंसा की वृत्ति रोकी नहीं जा सकेगी। चिकित्सा विज्ञान या मेडिकल साइंस का काम केवल शरीर और मन की चिकित्सा करना मात्र नहीं है। जब तक हम मन से परे (Beyond Mind) जाकर उस सचाई को नहीं खोजेंगे, समस्या का समाधान नहीं मिलेगा। अध्यात्म ने यही प्रयत्न किया था कि हमारी जो भावधारा या चित्त की वृत्तियां हैं, उनमें बदलाव कैसे लाया जाए ? हमारे देश के एक महान् ऋषि हुए हैं—महर्षि पतंजलि। उन्होंने 'योगसूत्र' लिखा। उसका पहला सूत्र है—चित्तवृत्तिनिरोधो योगः—योग का अर्थ है—चित्तवृत्तियों का निरोध करना। पूज्य गुरुदेव ने मनोनुशासनम् में लिखा—'पूर्वं शोधनं ततो निरोधः।' विरोध से पहले जरूरी है शोधन। चित्तवृत्ति का परिष्कार करना योग है। वृत्ति का परिष्कार करने के लिए उसकी प्रक्रिया को समझना अपेक्षित है।

विज्ञान और धर्म

मैं स्वीकार करता हूं—वैज्ञानिक खोजों ने बहुत सारी सचाइयों को उजागर किया है। बहुत सारे धर्मगुरु कहते रहे हैं—विज्ञान ने धर्म का सत्यानाश कर दिया किन्तु पूज्य गुरुदेव ने इस कथन का कभी समर्थन नहीं किया। उनका निरंतर यह घोष रहा—विज्ञान को पढ़ना चाहिए। विज्ञान ने सचमुच धर्म का बहुत उपकार किया है। प्रेक्षाध्यान के बहुत सारे प्रयोगों में साइकोलोजी, फिजियोलोजी, सोशोलोजी, इकोलोजी आदि का सहारा लिया गया है। इन्हीं के आधार पर प्रेक्षाध्यान के सारे प्रयोग चले हैं, चल रहे हैं। इनसे बड़ी मदद मिली है। दिल्ली में सन् १९८७ में प्रेक्षाध्यान और शरीरविज्ञान पर एक गोष्ठी आयोजित हुई थी। उसमें ध्यान के कई अच्छे साधक और मेडिकल साइंस के कई बड़े डॉक्टर भाग ले रहे थे। मैंने कहा—'श्वास लेने की सबसे अच्छी पद्धति यह है कि श्वास लेते समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा पेट फूलना चाहिए, श्वास छोड़ते समय पेट सिकुड़ना चाहिए।' ध्यान के कुछ विशिष्ट साधकों ने कहा—'नहीं, श्वास लेते समय पेट नहीं, सीना या छाती फूलनी चाहिए।' वहां उपस्थित डॉक्टरों ने कहा—'महाराज, आप ठीक कह रहे हैं। श्वास लेते समय डायाफ्राम सरकेगा और जब डायाफ्राम नीचे जायेगा तो पेट फूलेगा।

संचालक है प्राणशक्ति

आज शरीरविज्ञान के द्वारा शरीर के बहुत सारे रहस्यों को समझने का अवसर मिला है। जब तक शरीर के रहस्यों को नहीं समझा जाता, नाड़ीतंत्र और ग्रंथितंत्र के रहस्यों को नहीं जाना जाता, तब तक शायद योग और अध्यात्म को नहीं समझा जा सकता। शरीरविज्ञान और शरीरक्रिया विज्ञान ने अवयवों पर बहुत काम किया है। आज की शल्य चिकित्सा को एक दैविक क्रिया जैसा कहा जा सकता है। शरीरविज्ञान के साथ प्राणशक्ति की बात और जुड़नी चाहिए। हमारे शरीर का सारा संचालन प्राणशक्ति के द्वारा ही होता है। हम प्राण को उपेक्षित करके चलेंगे तो आगे नहीं बढ़ा जा सकेगा। सब कुछ निर्भर ही प्राणशक्ति पर है। श्वास अलग है, प्राण अलग है। आयुर्वेद में इसकी पांच कोटियां बताई गयी हैं—प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान। इस प्राणशक्ति का विकास अध्यात्म और विज्ञान—दोनों के योग से हो तो व्यक्ति और समाज को स्वस्थ बनाने में बहुत सफलता मिलेगी।

जैविक घड़ी और स्वरोदय

प्रेक्षाध्यान के शिविर में महाराष्ट्र की महिला ने भाग लिया। वह चौबीस घंटे भयभीत रहा करती थी। सोते समय डर और जागते समय भी डर। बहुत चिकित्सा के बाद भी उसे कोई लाभ नहीं हुआ था। हमने मूल बात को पकड़ा। प्रेक्षाध्यान में नाभि के स्थान को तैजसकेन्द्र कहा जाता है। जिसके नाभि के स्थान पर प्राणऊर्जा की अत्यधिक कमी होती है, उसे भय बहुत लगता है। किस अवयव में किस समय प्राणऊर्जा काम करती है, इस पर स्वरोदय के आचार्यों ने बहुत काम किया था। आज के कुछ शरीर-विज्ञानी भी इस पर काम कर रहे हैं। जिन्होंने बायोलोजिकल क्लाक या जैविक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घड़ी का विकास किया, उन्होंने उसके आधार पर समय का भी निर्धारण किया है। प्रातःकाल चार बजे से पांच बजे तक हमारी प्राणशक्ति शरीर के किस अवयव में काम करती है ? छह से सात बजे तक किस अवयव में काम करती है ? किस समय मेलाटोनिन और सेराटोनिन का स्राव अधिक होता है ? प्राणशक्ति इनमें सहायक बनती है।

जीवनशैली का पहला तत्त्व

अध्यात्म और विज्ञान की ये दोनों धाराएं हमारे परिपार्श्व में चल रही हैं। सत्य कभी दो नहीं होता। चाहे कोई भी खोजे। किसी भी माध्यम से किसी भी नाम से खोजें, सत्य कभी दो हो नहीं सकता। वह एक ही होता है, अन्यथा नहीं होता। कहने का प्रकार, भाषा, शैली—ये सब भिन्न हो सकते हैं, किन्तु सत्य एक होता है। इन सबके आधार पर हम जीवनशैली का एक निर्धारण करें तो जीवनशैली का पहला तत्त्व होगा—संयम। बड़ी आवश्यकता है इसकी। आहार का संयम करें, इन्द्रिय और वाणी का संयम करें। यदि वाणी का संयम हो जाये तो समाचारपत्रों के लिए यह समस्या खड़ी हो जाए कि इतना क्या लिखें ? समाचारपत्रों में तो वाणी का असंयम ही असंयम दिखाई देता है। यदि संयम जीवनशैली का अंग बन जाये तो समस्या को उलझने का अवकाश ही न मिले। हमारे शरीर में संयम की प्राणलियां हैं। रासायनिक नियंत्रण प्रणाली, विद्युत्-नियंत्रण प्रणाली हमारे शरीर में बराबर काम कर रही है। क्रोध को पैदा करने का सिस्टम हमारे शरीर में है तो उसे नियंत्रित करने वाला सिस्टम भी हमारे शरीर में है। वह रोक देता है—अभी इतना क्रोध मत करो, श्वास गड़बड़ा जायेगा। ये दोनों प्रणालियां हैं हमारे शरीर में।

लाइट और ब्रेक

जीवनशैली का दूसरा सूत्र है—समता। इस संदर्भ में अध्यात्म और योग की गहराई में चाहे हम न जाएं किन्तु एक व्यावहारिक धरातल पर अवश्य सोचें। इस संदर्भ में समता का अर्थ होगा—अपने इमोशन्स पर कंट्रोल करना, उन्हें संतुलित करना। यदि आज समाज के बड़े-बड़े लोग अपने संवेगों पर नियंत्रण करना सीख जाएं तो मानना चाहिए कि पचास प्रतिशत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्याएं सुलझ गयीं। बहुत सारी समस्याएं अनियंत्रित संवेगों के कारण उलझ रही हैं। प्रेक्षाध्यान में दो बातों पर विशेष ध्यान दिया गया—अन्तर्दृष्टि जागनी चाहिए, संवेगों पर नियंत्रण, ब्रेक लगाने की शक्ति जागनी चाहिए। मैं इस संदर्भ में एक छोटी-सी कहानी कहा करता हूं।

कार आ रही थी। चौराहे पर खड़े सिपाही ने रुकने का संकेत किया। ड्राइवर ने निकट आकर पूछा—'क्यों, आप रोक क्यों रहे हैं ?' सिपाही ने कहा—'लाइट नहीं है तुम्हारी कार में।' ड्राइवर बोला—'इसमें ब्रेक भी नहीं है। तुम सामने से हट जाओ, अन्यथा मारे जाओगे।'

वह कार बहुत खतरनाक होती है, जिसमें लाइट नहीं होती और जिसमें ब्रेक नहीं होता। वह आदमी भी क्या कम खतरनाक है, जिसका इंट्यूशन पावर कमजोर है और जिसमें अपने इमोशन्स पर कंट्रोल करने की क्षमता नहीं है ?

अनासक्ति

जीवनशैली का तीसरा सूत्र है—अनासक्ति। गीता में अनासक्ति का बहुत सुन्दर सूत्र किया गया है। जैन शास्त्रों में उमास्वाति ने मूर्च्छा पर बहुत सटीक लिखा है। धन सब कुछ नहीं है, यह धारणा व्यापक होनी चाहिए। आज तो समाज में यह धारणा ही बलवती हो चुकी है कि धन ही सब कुछ है। लोगों की दृष्टि में इसका स्थान परमात्मा के बराबर है, किन्तु किसी-किसी के लिए तो वह उससे भी बढ़कर है। उनका हर काम कमाई के लिए है। जीवन का उद्देश्य ही कमाना मान लिया है लोगों ने। यह वृत्ति भी बदलनी चाहिए।

जीवनशैली के इन तीन सूत्रों पर अध्यात्म और विज्ञान के लोग गंभीरता से चिंतन करेंगे। आईंस्टीन ने कहा था—'अध्यात्म के बिना विज्ञान और विज्ञान के बिना अध्यात्म क्रमशः लंगड़ा और अंधा है। उस महाविज्ञानी का यह कथन पूर्णतः सत्य है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति के साथ कैसे जीएं ?

हमारा दृश्य जगत् दो तत्त्वों का संग्रहालय है। एक तत्त्व है जीवच्छरीर और दूसरा तत्त्व है जीव-मुक्त शरीर। हमें जो कुछ दिखाई दे रहा है, वह वर्तमान में किसी न किसी जीव का शरीर है अथवा वह पहले किसी न किसी जीव का शरीर रह चुका है इसलिए सृष्टि को हम जीव-शरीर की सृष्टि कह सकते हैं।

मनुष्य स्वयं प्राणी है इसलिए वह स्वयं पर्यावरण का एक अंग है। उसके लिए सारी सृष्टि पर्यावरण है। पर्यावरण को प्रदूषित करने वाला अपने अस्तित्व को इसलिए खतरा पैदा कर रहा है कि वह स्वयं पर्यावरण से अभिन्न है। पर्यावरण का खतरा स्वयं के लिए खतरा है। इस अवधारणा अथवा अनुभूति के साथ ही हम अपनी वक्तव्यता प्रारंभ करना चाहते हैं।

प्रश्न है विकास का

वक्तव्य का पहला चर्चनीय बिन्दु है विकास। विकास के विषय में कोई दो मत नहीं हैं। मतभेद का विषय है सीमा। आदिमकाल से लेकर अब तक विकास का चक्र चलता रहा। उसकी गति बहुत धीमी थी। बीसवीं शताब्दी में विकास की रफ्तार बहुत तेज हुई है। उसका श्रेय विज्ञान को है। सृष्टि संतुलन (इकोलॉजी) की समस्या का श्रेय भी विकास की आंधी को ही है। असंतुलित विकास को एक नदी का प्रवाह मानें तो बाढ़ का खतरा हो रहा है। मानवीय मूल्य और पर्यावरण—ये दोनों तटबंध टूट गए हैं। अब जल-प्रवाह की रोकथाम करना संभव नहीं है। मानवीय मूल्यों के विकास और पर्यावरण की सुरक्षा के साथ-साथ जो विकास होता है, वह संतुलित विकास है। उससे मानवीय अस्तित्व को कोई खतरा पैदा नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आर्थिक महत्त्वाकांक्षा अथवा आर्थिक स्पर्धा ने मानवीय मूल्यों और पर्यावरण—दोनों की उपेक्षा की है फलतः सृष्टि संतुलन (इकोलॉजी) की समस्या उत्पन्न हुई है।

विकास के प्रति वर्तमान दृष्टिकोण सम्यक् नहीं है। वह संवेग के अतिरेक से प्रभावित है। अप्रभावित चिन्तन और अप्रभावित बुद्धि का निर्णय सही होता है। संवेग की अतिरेक दशा में चिन्तन और बुद्धि—दोनों निष्क्रिय हो जाते हैं। इस निष्क्रियता की भूमिका पर होने वाला विकास मानवीय सभ्यता और संस्कृति के लिए वरदान नहीं होता।

समस्या संवेगातिरेक की

औद्योगिक और आर्थिक विकास ने कुछ समस्याएं सुलझाई हैं। आज रोटी, कपड़ा अधिकांश गरीबों की झोंपड़ी तक पहुंच रहे हैं। मकान की समस्या अभी भी बनी हुई है। फिर भी यह कहने में संकोच नहीं होगा—आर्थिक विकास ने अमीरी को बढ़ावा देने के साथ-साथ गरीबी को भी बढ़ावा दिया है। वर्तमान से संपत्ति और उपभोग के साधनों पर अल्पसंख्यक व्यक्तियों का अधिकार है। बहुसंख्यक लोग उस अधिकार से वंचित हैं। विकसित राष्ट्र जितनी साधन-सामग्री का उपभोग कर रहे हैं, उससे न्यूनतर उपभोग सामग्री विकासशील राष्ट्रों के पास है और अविकसित राष्ट्रों के पास न्यूनतम। गरीबी की अनुभूति और उससे उत्पन्न असंतोष आज जितना जटिल है उतना अतीत में नहीं था। वह असंतोष प्रकृति के नियमों को भंग करने का हेतु बन रहा है। हर व्यक्ति येन-केन-प्रकारेण अमीर बनना चाहता है। उस धुन में जंगलों की कटाई हो सकती है, फैक्ट्रियों का कचरा नदियों में प्रवाहित कर जल को दूषित किया जा सकता है और भूमि का मर्यादाहीन खनन किया जा सकता है। अमीरी के लिए सब कुछ किया जा सकता है और सब कुछ हो रहा है। हम संवेगातिरेक की समस्या को सुलझाए बिना अनैतिकता अथवा अप्रमाणिकता की समस्या को नहीं सुलझा सकते। अनैतिकता की समस्या को सुलझाए बिना सृष्टि संतुलन (इकोलॉजी) और पर्यावरण (इनवार्नमेन्ट) की समस्या को नहीं सुलझा सकते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्या का दूसरा पक्ष

बढ़ती हुई आबादी स्वयं एक समस्या है। प्रत्येक आदमी की प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बड़े उद्योगों की जरूरत है इसलिए विकास की सीमा को निर्धारित नहीं किया जा सकता। इस तर्क के पीछे छिपी हुई सचाई को कोई भी व्यक्ति अस्वीकार नहीं करेगा। हम समस्या के दूसरे पक्ष पर विचार करें। लोभ एक तीव्र संवेग है। उसकी प्रेरणा ने विकास की अवधारणा को जो आधार दिया है, उसे सीमित करना आवश्यक है। हमारा अभिमत है—असंतुलित संवेग और असंतुलित विकास की अवस्था में प्रकृति के साथ जीने की कल्पना कठिन हो जाती है। आज का करणीय कार्य यह है कि हम लोभ के संवेग के साथ करुणा के संवेग को जागृत करें। लोभ के संवेग को नियंत्रित करने का शक्तिशाली अस्त्र करुणा, अहिंसा या मैत्री है। महावीर ने कहा था—छोटे-से-छोटे जीव के अस्तित्व को अस्वीकार मत करो और अपने अस्तित्व को भी अस्वीकार मत करो। जो दूसरे जीव के अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह अपने अस्तित्व को अस्वीकार करता है। जो अपने अस्तित्व को अस्वीकार करता है, वह दूसरे जीव के अस्तित्व को अस्वीकार करता है—

से वेमि-णेव सयं लोगं अब्भाइक्खेज्जा, णेव अत्ताणं अब्भाइक्खेज्जा।
जे लोयं अब्भाइक्खइ, से अत्ताणं अब्भाइक्खइ।
जे अत्ताणं अब्भाइक्खइ, ये लोयं अब्भाइक्खइ।

नैतिक मूल्यों का ह्रास

दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करने वाला ही प्रकृति के साथ जी सकता है। कुछ चिन्तकों का तर्क है—बुद्धिमान् मनुष्य प्रकृति के साथ छेड़छाड करता है, विकास के लिए वैसा करना जरूरी है। वह प्रकृति में होने वाली क्षति की पूर्ति करना भी जानता है, इसलिए विकास की प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता, उसकी कोई सीमा नहीं की जा सकती। यह चिन्तन अर्थहीन नहीं है। ऊर्जा का व्यय होता है तो उसके नए स्रोत खोजे जा सकते हैं। जंगलों की कटाई होती है तो नए जंगल तैयार किए जा सकते हैं। प्रदूषित पर्यावरण को विशुद्ध करने के तरीके खोजे जा सकते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। संवेग के असंतुलन और नैतिकता के मूल्यों के ह्रास की समस्या के समाधान का विकल्प क्या होगा ? जैसे-जैसे विकास की गति तेज हो रही है वैसे-वैसे मनुष्य का संवेगात्मक असंतुलन बढ़ रहा है। आर्थिक अपराध से आज की चेतना जितनी ग्रस्त है, उतनी शायद पहले नहीं थी। आतंककारी मनोदशा में भी वृद्धि हुई है। क्या औद्योगिक और आर्थिक विकास इनको रोक पाएगा ? इनके निरोध का उपाय खोजे बिना मनुष्य प्रकृति के साथ नहीं जी सकता, मानसिक शांति और विश्व-शांति का स्वप्न भी नहीं ले सकता।

नई दिशा

विश्वविद्यालय की शिक्षा ने बौद्धिक विकास और वैज्ञानिक विकास के नए द्वार खोले हैं। हम इस युग के चिन्तन-मंथन और सुविधा की प्रचुर सामग्री से संतुष्ट हैं इसीलिए इस दिशा में निरन्तर आगे बढ़ने की बात सोच रहे हैं। तनाव, भय, अपराध और मादक वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति संकेत दे रही है कि मनुष्य के भीतर भयंकर असंतोष है और वह असंतोष मनुष्य को प्रकृति के साथ अन्याय करने के लिए विवश कर रहा है। संतोष और असंतोष—दोनों की समीक्षा करने पर एक नई दिशा दिशा की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। वह दिशा है भावात्मक अनुभूति (इमोशनल इंटेलीजेंसी) की। क्या इस दिशा में कुछ सोचना आवश्यक नहीं है ? प्रकृति के साथ जीने के लिए पूरी जीवन शैली का विश्लेषण आवश्यक है। केवल भौतिक दृष्टिकोण से निर्मित जीवनशैली प्रकृति के साथ जीने का आधार नहीं देती। केवल आध्यात्मिक दृष्टिकोण के आधार पर निर्मित जीवनशैली जीवन यात्रा के लिए पर्याप्त नहीं होती। जीवनशैली को सर्वांगीण बनाने के लिए नए दर्शन की जरूरत है। उसके आधार पर आर्थिक विकास, भौतिक विकास और आध्यात्मिक विकास की सामंजस्यपूर्ण प्रणाली निर्धारित की जा सकती है। उसमें बौद्धिक विकास और भावात्मक विकास के संतुलन की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

सुख की अवधारणा

जब तक इन्द्रियजन्य सुख-संवेदना के आधार पर चलने वाली जीवनशैली

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगी तब तक हम प्रकृति के साथ जीने की बात संगोष्ठियों और संभाषणों में भले ही करें, यथार्थ के धरातल को वह प्रभावित नहीं कर पाएगी। इन्द्रिय-चेतना के स्तर से ऊपर उठकर चिन्तन करने का अर्थ होगा—सुख की अवधारणा में परिवर्तन। अध्यात्म के आचार्यों ने कहा था—इन्द्रिय जन्य सुख वास्तविक सुख नहीं है। जिसका परिणाम सुखद नहीं होता, वह सुख वस्तुतः दुःख ही होता है। इस प्रसंग में सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक डेविड बूम के विचार बहुत मननीय हैं—

Indeed, many scientists have noted that the validity of their sudden flashes of insight tends to be in inverse proportion to the amount of pleasure to which they give rise (and therefore to the intensity of the conviction that they are ture).....so it may seem in this way that there is often a true perception at a deeper level, that can not be translated into thinking. So that what is perceived is distorted and lost.[1]

'सत्य के अंतर्दर्शन में जो सुख की अनुभूति होती है, वह बाह्य पदार्थों के अनुभव से होने वाले सुख से सर्वथा भिन्न है।''अनुभूति के गहन स्तर पर जो सत्य का दर्शन होता है, उसका बुद्धि के स्तर पर अनुवाद नहीं किया जा सकता। अनुवाद करने का प्रयत्न करेंगे तो वह विकृत और तिरोहित हो जाएगा।'

मध्यम मार्ग

प्रकृति के साथ होने वाले व्यवहार में सब वैज्ञानिक और विचारक एक मत नहीं हैं। कुछ विचारकों का मत है—प्रकृति के प्रकोप को शांत करने की विधियां हमारे पास हैं इसलिए पर्यावरण प्रदूषण की विभीषिका विकास की यात्रा में बाधा नहीं बन सकती।

कुछ विचारकों का मत है—प्रकृति के नियमों की हमें पूरी जानकारी नहीं है इसलिए उसके साथ अधिक छेड़छाड़ करना मानवीय एवं प्राणिमात्र के अस्तित्व के लिए खतरनाक है।

---

1. David Bohm unpublished material—"The Movement of the mind beyond thinking and feeling.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कुछ विचारकों का मत है—हम आदम युग में लौटने की बात न सोचें किन्तु आर्थिक विकास और उपभोग का संयम कर एक संतुलित जीवनशैली को विकसित करें।

यह मध्यम मार्ग है। अणुव्रत और अणुव्रत अनुशास्ता का चिन्तन इसके परिपार्श्व में चल रहा है। इस मध्यम मार्ग पर विचार करने के लिए इस कांफ्रेंस (Living in Harmony with nature on 17-21 December, 1995) की आयोजना की गई है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हिमकुण्ड और अग्निकुण्ड दोनों आदमी में

अमेरिकी परामनोवैज्ञानिक स्टीवेंसन ने पुनर्जन्म की एक घटना लिखी है—एक व्यक्ति ने दूसरे के पचास हजार रुपये चुरा लिये। उस व्यक्ति को बड़ा सदमा लगा। उसने कहा—भाई ! मेरे रुपये लौटा दो, रुपये चुराना अच्छी बात नहीं है। बहुत कहने-सुनने पर भी उस व्यक्ति ने उसके रुपये उसे नहीं लौटाये। उस व्यक्ति ने रुपये चुराने वाले से कहा—'इसका फल तुम्हें भुगतना पड़ेगा।' जिसके रुपये चुराए गए थे, उसकी पीड़ा बढ़ती गई और कुछ दिन बाद इसी दुःख में उसकी मृत्यु हो गयी। ठीक नौ महीने बाद उस चुराने वाले आदमी के घर एक लड़का पैदा हुआ। कुछ दिन बाद ही वह बीमारी से आक्रान्त हो गया। निरन्तर अस्वस्थता ने उस सेठ को बहुत चिंतित कर दिया। बहुत इलाज कराया, किंतु लड़का ठीक नहीं हुआ। जिस दिन इलाज में पूरे पचास हजार रुपये लग गये, उसी दिन लड़का चल बसा। उस छोटे-से बच्चे ने बिल्कुल स्पष्ट कहा—'मैंने अपने रुपये वसूल कर लिये। मेरा तुमसे कोई सम्बन्ध नहीं है। मैं जा रहा हूं।' वह यह कहकर चल बसा।

उत्तरदायित्व का सिद्धान्त

इस प्रकार की न जाने कितनी घटनाएं होती हैं। किसी को कष्ट होता है कि पत्नी चली गयी। प्रश्न यह है कि उसका उत्तरदायी कौन है ? यह घटना क्यों घटित हुई ? उसके लिए कोई जिम्मेदार तो होगा ही। जब वर्तमान में कोई घटना घटित होती है, आदमी को बड़ा कष्ट होता है, पर आदमी यह नहीं सोचता कि अतीत में उसने क्या किया है ? आखिर उत्तरदायित्व आदमी को अनुभव करना होगा। आदमी काम करते समय सोचता नहीं है अथवा बहुत कम सोचता है। वह यह नहीं सोचता—मैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

किसी के साथ अन्याय कर रहा हूं, कोई अतिक्रमण कर रहा हूं, दूसरे को सता रहा हूं तो इसका परिणाम क्या होगा ?

भारतीय चिन्तन और दर्शन का एक बहुत बड़ा सिद्धान्त रहा है—कृत कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं है। आदमी जो कुछ भी करता है, उसका अंकन हमारे मस्तिष्क में हो जाता है, सूक्ष्म-शरीर और कर्म-शरीर में हो जाता है। उस क्रिया की प्रतिक्रिया होती है और व्यक्ति को अपने कृत का परिणाम भुगतना पड़ता है। चाहे इस जन्म में भुगतना पड़े या अगले जन्म में किन्तु कर्म फल से कोई व्यक्ति बच नहीं सकता। यह कर्म का सिद्धान्त, आत्मकर्तृत्व का सिद्धान्त अथवा अपने उत्तरदायित्व का सिद्धान्त समझ में आ जाये तो आदमी का आचार बहुत बदल जाए।

किसी को धोखा देना, ठग लेना वर्तमान में बहुत अच्छा लगता है। किसी का धन चुरा लेना, अपहरण कर लेना, शोषण करना व्यक्ति को प्रिय लगता है, किन्तु जब परिणाम आता है, तब पश्चाताप के सिवाय कुछ भी हाथ नहीं लगता। उस स्थिति में आदमी रोता है, बिलखता और कलपता है।

हिमकुण्ड : तप्तकुण्ड

हम इस प्रश्न पर विचार करें—आखिर उत्तरदायी कौन है ? अच्छा और बुरा—दोनों होते हैं। हिमकुण्ड भी है और अग्निकुण्ड भी है। सुना है कि हिमालय पर दो कुण्ड हैं—हिमकुण्ड और तप्तकुण्ड। हिमालय शीतलता और शान्ति का प्रतीक है। ऐसी जगह ऊष्मा या आग की कल्पना कैसे की जा सकती है ? किन्तु है हिमालय में भी तप्तकुण्ड। प्रतीक की भाषा में कहें तो अनुकूलता और प्रतिकूलता—ये दोनों स्थितियां प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में आती हैं। उसके जीवन में शांति भी है, अशांति भी है, सुख भी है, दुःख भी है। लोकतंत्र में सरकार उत्तरदायी होती है जनता के प्रति, संविधान के प्रति। तानाशाही सरकार उत्तरदायी नहीं होती, किन्तु चुनावों में निर्वाचित जन-प्रतिनिधि जनता के प्रति उत्तरदायी होते हैं। देश में जो कुछ अच्छा या बुरा होता है, उसकी जिम्मेदारी से वे बच नहीं सकते। प्रश्न है व्यक्ति के जीवन में जो कुछ घट रहा है, उसका उत्तरदायी कौन है ? यदि यह बात समझ में आ जाए तो बहुत सारी आपदाएं टल जाएं, दुःख बहुत कम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो जाएं। समस्या यह है —आदमी जानता नहीं है।

वृक्ष वही है

एक कहानी है, बहुत पुरानी और मार्मिक। एक आदमी व्यापार करने दूर देश में गया, साथ में अपनी गाय को भी ले गया। जहां वह गया, वहां गाय नहीं होती थी। लोग जानते नहीं थे कि गाय क्या होती है ? ऐसे बहुत सारे टापू इस दुनिया में आज भी हैं जहां गाय नहीं पाई जाती। व्यापारी ने राजा से स्वीकृति ली और अपना व्यापार शुरू किया। उसने सोचा—राजा के साथ सम्बन्ध अच्छे रहेंगे तो व्यापार खूब चलेगा। इसी दृष्टि से एक दिन राजा को सम्मानपूर्वक दूध भेंट किया। राजा ने पूछा—'यह क्या है ?'

उसने कहा—'मेरे देश की एक अच्छी चीज है।'

'इसका क्या करें ?'

'आप इसे पीयें।'

राजा ने उस दूध को पीया, बहुत मीठा लगा। उसने उस पेय की बड़ी प्रशंसा की। दूसरे दिन वह खीर बनाकर राजा के पास ले गया। राजा ने उसे भी बहुत पसंद किया, बहुत चाव से खाया। दो-तीन दिन बाद वह रबड़ी लेकर राजा के पास पहुंचा। दूध की जितनी भी चीजें बनती हैं, एक-एक कर राजा की सेवा में लेकर वह उपस्थित होता रहा। राजा व्यापारी पर बहुत प्रसन्न हुआ, व्यापार से सम्बन्धित सारे कर माफ कर दिये। राजा ने कहा—तुम्हें हर तरह की राजकीय सुविधा मिला करेगी, तुम इसी तरह के खाद्य-पदार्थ हमारे पास पहुंचाते रहो। दो वर्ष बीत गए। एक दिन व्यापारी ने राजा से निवेदन किया—हुजूर ! अब मुझे इजाजत दें, मैं अपने देश जाना चाहता हूं। राजा ने कुछ क्षण सोचा, फिर कहा—तुम जा सकते हो, किन्तु यह बताते जाओ कि जो वस्तुएं तुम मुझे खिलाते रहे हो, वे कहां से आती हैं ? वह बोला—'हुजूर ! मेरे पास एक पेड़ है, उसी से ये सारी चीजें प्राप्त होती हैं।' राजा ने कहा—'उस पेड़ को हमें दे जाओ।' व्यापारी ने अपनी गाय राजा को उपहृत करते हुए कहा—'राजन् ! यही वह पेड़ है।' राजा ने खूंटे की रस्सी से बंधी उस गाय की ओर इशारा कर अपने कर्मचारियों से कहा—'यह पेड़ जब-जब जो चीज दे, उसे मेरे पास पहुंचाना।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजकर्मचारी सोने के पात्र हाथ में लिये प्रतीक्षा करने लगे—वह पेड़ कब कुछ दे और वे उसे राजा के समक्ष हाजिर करें। थोड़ी देर की प्रतीक्षा के बाद गाय ने मूत्र किया। सावधानी और शीघ्रता से कर्मचारियों ने उसे पात्र में संभाल लिया। वे उसे लेकर राजा के पास पहुंचे। राजा ने कुतूहल से उसे देखा और कहा—'आज तो इस पेड़ ने बिल्कुल नयी चीज दी है। उस व्यापारी ने ठीक ही कहा था कि वह हमेशा कुछ न कुछ नयी चीज देता है।' राजा ने जैसे ही पात्र मुंह से लगाया, थोड़ा-सा पीया, शीघ्रता से उसे उगल दिया। राजा के मन में संदेह हुआ, किन्तु यह सोच कर उसे अभिव्यक्त नहीं किया—जो हमेशा अच्छी चीज देता है, भूल से एक बार खराब भी दे सकता है।

कुछ समय बाद गाय ने गोबर किया। कर्मचारी उसे भी पात्र में लेकर राजा के सामने हाजिर हुए। राजा के लिए वह भी नयी चीज थी। जैसे ही थाल में रखी उस गरम वस्तु को राजा ने चखा, घृणा और दुर्गंध से उसे थूक दिया। राजा आवेश से भर उठा। उसने कहा—'व्यापारी ने मेरे साथ धोखाधड़ी की है। उस व्यापारी को गिरफ्तार करो।' आरक्षक दौड़े। व्यापारी को पकड़ कर राजा के पास लाए। राजा ने कहा—'मैंने तुम्हें राजकीय संरक्षण दिया और तुमने मेरे साथ धोखा किया। असली के बजाय नकली पेड़ दिया।' उसने कहा—'महाराज ! मैंने आपके साथ कोई धोखा नहीं किया है। मैंने आपको जो चीज दी है, वह असली है। किन्तु आपके कर्मचारी उससे अच्छी चीजें लेना नहीं जानते। इसीलिए आपको वैसी चीजें मिली हैं। चलिए, मैं आपको दिखाता हूं।'

व्यापारी ने राजा के सामने गाय को दुहा, स्वर्णपात्र में सफेद पेय राजा को पीने के लिए दिया। दूध पीते ही राजा के संदेह का निवर्तन हो गया। व्यापारी ने कहा—'महाराज ! इसी चीज से वे बहुत सारी वस्तुएं बनती हैं, जिन्हें मैं आपकी सेवा में पहुंचाता था।'

दुहना जानें

हम अपनी आत्मा के भीतर झांकें। उसमें दूध भी है, गो-मूत्र तथा गोबर भी है। कोई दुहना जाने तो दूध मिलेगा। दुहना न जाने तो गोबर और मूत्र मिलेगा। सब कुछ है हमारे भीतर। अच्छाई भी है, बुराई भी है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इन सबके लिए हम स्वयं उत्तरदायी हैं, दूसरा कोई नहीं। जब भी कोई घटना घटती है, हमारा ध्यान तत्काल दूसरे पर जाता है, व्यक्ति सोचता है—उसने मेरा ऐसा कर दिया। मेरा काम बिगाड़ दिया, नुकसान कर दिया। वह यह नहीं सोचता कि मैंने स्वयं भी तो कुछ किया होगा, कहीं वह मेरे द्वारा कृत की प्रतिक्रिया तो नहीं है ? यह एक निश्चित तथ्य है—जो कुछ हम करते हैं, उसकी प्रतिक्रिया जरूर होती है।

संपन्नता से शांति नहीं मिलती

इस दुनिया में चेतना और ज्ञान से बढ़कर कोई तत्त्व नहीं है। चेतना कहां है ? वह हमारे भीतर है या आकाश में कहीं लटक रही है ? आज जो कुछ भी संसाधन के रूप में है, वह सब इसी चेतना का परिणाम है। सुख या आनन्द कहां है ? क्या सुख या आनन्द की कोई दुकान है, जहां से उसे खरीदा या बेचा जा सके ? यदि उसकी कोई दुकान होती तो बड़े से बड़े धनपति उसकी खोज में दर-दर नहीं भटकते। दिल्ली प्रवास का प्रसंग है। एक अमेरिकन भाई पूज्य गुरुदेव के पास आया, बोला—'महाराज ! मुझे आप शांति की बात बताएं। मुझे तो शांति चाहिए।' गुरुदेव ने कहा—'तुम अमेरिका के निवासी हो। वह संपन्न और शक्तिशाली देश है, वहां किसी चीज का अभाव नहीं है। वह बहुत सारी चीजें दुनिया के अन्य देशों को बांटता है। यह शांति तुम्हें वहां क्यों नहीं मिली ?' वह बोला—'महाराज ! डॉलर, पौंड या रूबल में मिलती तो हम उसके लिए यहां क्यों भटकते ? शांति संपन्नता से नहीं मिलती, यह हम लोगों को अच्छी तरह मालूम हो गया है। भारत एक गरीब देश है। यदि वह सम्पन्न होता तो उसे भी पता चल जाता कि शांति और सुख धन से नहीं पाया जा सकता।'

एक आदमी को हिमालय की किसी गुफा में या एवरेस्ट की चोटी पर बिठा दिया जाए तो उसे वहां शांत एकान्त वातावरण तथा शीतलता मिलेगी, किन्तु मन में एक पीड़ा रहेगी, धन-वैभव और प्रियजनों के बिछोह की। घर के भीतर एयरकंडीशन में बैठे हुए आदमी को बाहरी ताप तो नहीं लगेगा, किन्तु भीतर एक दावानल सुलगता हुआ महसूस होगा। शांति और सुख हमारे भीतर है तो अशांति और दुःख भी हमारे भीतर है। अब यह हम पर निर्भर है कि हम शांति और सुख निकालें या अशांति और दुःख।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

धड़कन बंद हो गई

सौराष्ट्र की घटना है। किसी गरीब आदमी ने लॉटरी के टिकट खरीदे। सौभाग्य से उसकी लॉटरी भी निकल आई। अधिकारियों ने सोचा—मजदूर आदमी है। पांच करोड़ की लॉटरी निकली है। इतना बड़ा पुरस्कार सुनकर ही कहीं उसकी हृदय-गति न रुक जाए, इसलिए उन्होंने एक डॉक्टर को इस काम का दायित्व सौंपा कि वह मनोवैज्ञानिक ढंग से यह सूचना उस गरीब आदमी को दे। वह डॉक्टर उस गरीब मजदूर की झोंपड़ी के पास पहुंचा और उसके आसपास चक्कर लगाने लगा। गरीब मजदूर ने उससे पूछा—'आप यहां कैसे ?' डॉक्टर ने कहा—'तुम लोगों की गरीबी देख रहा हूं। इतनी तंगी में गुजारा कैसे करते हो ?' उसने कहा—'बस, ऐसे ही किसी तरह जिन्दगी बसर कर लेते हैं।' डॉक्टर ने मनोवैज्ञानिक ढंग से बात करते हुए कहा—'पैसे के अभाव में इतना कष्ट झेल रहे हो ? अगर पैसा हो जाए तो पहला काम क्या करोगे ?' उस मजदूर ने कहा—'करेंगे क्या साहब ! यह झोंपड़ी ठीक करवा लेंगे। राशन-पानी खरीद लेंगे। डॉक्टर ने कहा—'यदि आज तुम्हें दस हजार रुपये मिल जाएं तो क्या करोगे ?' मजदूर डॉक्टर के साथ इस मजाक में शामिल हो गया। उसने कहा—'इतने मिल जाएं तो निश्चित रूप से आधा आपको दे दूंगा।' डॉक्टर ने मुस्कुराते हुए फिर पूछा—'अगर बीस लाख मिल जाएं तो ?' मजदूर ने भी उसी हास्य से कहा—'फिर दस मेरा, दस आपका।' डॉक्टर का प्रस्ताव आगे से आगे बढ़ता गया और अन्ततः पूछ ही लिया—'अगर पांच करोड़ मिल जाएं तो ?' मजदूर ने उसी तरह कहा—'मैं कह चुका हूं कि आधा आपका, आधा मेरा, पर ऐसा मजाक आप मुझसे क्यों कर रहे हैं ? मैंने जो कह दिया, उसे अन्तिम मानें। मैं अपनी बात से कभी मुकरता नहीं हूं।' उसने कहा—'तुम्हारी पांच करोड़ की लॉटरी उठी है।' मजदूर ने कहा—'ढाई करोड़ आपके हैं।' डॉक्टर ने चौंककर कहा—'ढाई··· ?··?··? और इतना कहकर वह गिर पड़ा। उसके दिल की धड़कन बन्द हो चुकी थी। गया था समझाने के लिए और स्वयं ही समझ गया।

दो प्रणालियां

अग्नि का कुण्ड भीतर है। जब तक वह बुझता नहीं है, शांत नहीं होता है,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तब तक दुःख देता रहेगा। वह प्राण भी ले सकता है। जब तक वह भीतर की ज्वाला शांत नहीं होगी, आदमी उसकी भट्टी में जलता रहेगा। हम कर्मवाद के इस सिद्धांत को समझें—हमारे भीतर अग्निकुंड और हिमालय दोनों हैं। महावीर ने अपनी वैज्ञानिक भाषा में कहा—प्रत्येक मनुष्य के भीतर दो प्रकार की प्रणालियां चल रही हैं। एक है औदयिकभाव और दूसरा है क्षायोपशमिकभाव। एक कर्म के उदय की प्रणाली है और दूसरी कर्म के विलय की प्रणाली है। जो उदय की प्रणाली है, उसे अग्निकुण्ड कहा जा सकता है और जो क्षायोपशमिक प्रणाली है, उसे हिमालय या हिमकुण्ड कहा जा सकता है।

मनोवैज्ञानिकों का कथन

आज के मनोवैज्ञानिक भी इन दोनों प्रणालियों का समर्थन करते हैं। वे यह भी मानते हैं कि दो प्रकार के व्यक्तित्व एक साथ काम कर रहे हैं। वे अभी इसकी पूरी व्याख्या तो नहीं कर पाये हैं, किन्तु यह माना जा रहा है कि आदमी में दो मस्तिष्क काम करते हैं। मनोवैज्ञानिकों ने इस संदर्भ में एक घटना का विवरण दिया—'एक आदमी को सोते हुए सपना आया। वह सपने में ही उठा और एक हाथ से पत्नी को तेज चांटा मारने लगा, दूसरे हाथ से पुचकारने और सहलाने भी लगा।' इस घटना की इस प्रकार व्याख्या की गई, यह निष्कर्ष निकाला गया—'एक व्यक्तित्व क्रोध में आकर उसे मार रहा है और दूसरा व्यक्तित्व प्यार से उसे सांत्वना दे रहा है।' मनोवैज्ञानिक अनकांसियस माइंड तक पहुंचे हैं, किन्तु कर्मवाद तक पूरी तरह नहीं पहुंच पाए हैं। यदि यह बात समझ में आ जाए कि हमारे भीतर दो प्रकार की प्रणालियां काम कर रही हैं, तो निश्चय ही आश्चर्यजनक तथ्य सामने आएंगे। यदि हम क्षयोपशम भाव को प्रबल बना लें तो हमारा व्यक्तित्व बदल सकता है।

कर्मवाद का मूलभूत सिद्धान्त

बदलने का पहला उपाय इस सचाई का अनुभव करना है कि जो कुछ हो रहा है, उसके लिए उत्तरदायी मैं हूं। आज की सबसे बड़ी विडंबना यही है कि आदमी दायित्व स्वयं पर लेना नहीं चाहता। वह प्रत्येक बात के लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दूसरों पर दोषारोपण करता है। जब तक आदमी में यह दायित्वबोध नहीं जागेगा, समस्या का समाधान नहीं होगा। कर्मवाद का यह एक मूलभूत और शाश्वत सिद्धान्त है कि व्यक्ति अपने कृत के लिए स्वयं उत्तरदायी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने इस दायित्व का अनुभव करे—'मैं क्या कर रहा हूं, मैंने क्या किया है और मुझे क्या करना चाहिए। जो दुर्घटना मेरे आसपास घटित हो रही है, वह कहीं मेरे कर्म का ही फल तो नहीं है। किसी का बुरा किया था, क्या इसीलिए आज मेरे साथ भी बुरा हो रहा है ?' ऐसा चिंतन प्रस्फुटित हो जाए तो शायद आचारशास्त्रीय शुद्धि घटित हो जाए, अनैतिकता की समस्या भी काफी हद तक सुलझ जाए, बुराइयां भी काफी कम हो जाएं। यह एक शाश्वत स्वर है—'अप्पा कत्ता विकत्ता य, दुहाण य सुहाण य।' अगर इस स्वर को सुन सकें और जीवन में साध सकें तो अतीत में जो प्रमाद हुआ है, भूलें और गलतियां हुई हैं, उनसे एक सबक मिलेगा, आगे का हमारा रास्ता बहुत साफ और निष्कंटक हो जायेगा। इस स्थिति में हम अपने भीतर स्थित अग्निकुण्ड को भी देख सकेंगे, हिमालय अथवा हिमकुण्ड को भी देख सकेंगे। इतना ही नहीं, हम अपनी कर्तृत्व शक्ति का उस दिशा में नियोजन भी कर पाएंगे, जो आत्मा के उन्नयन के लिए अभिप्रेत और अपेक्षित है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपराध निरोध का मंत्र : चेतना का परिष्कार

जैन भाषा में यौगलिक युग और वैदिक भाषा में मनु का युग समाज-रचना का आदि युग था। समाज की प्रतिष्ठा इन शब्दों में व्यक्त की गयी—'कोई भिखारी नहीं है, कोई दाता नहीं है। कोई दस्यु नहीं है, कोई अपराधी नहीं है। सब अपने-अपने स्वत्व में संतुष्ट हैं।' उस समाज से वर्तमान समाज की तुलना नहीं की जा सकती।

असंतोष की परिणति है अपराध

आज हर व्यक्ति के मन में असंतोष है। उसकी चरम परिणति है अपराध। इन दो शताब्दियों में अपराधमुक्त समाज की रचना के लिए अनेक प्रयत्न किये गये। पश्चिमी चिंतकों ने समाजवाद (ब्रिटेन) साम्यवाद (सोवियत संघ) श्रमिक संघवाद (फ्रांस) जैसे नये शब्द और अभिनव सिद्धान्त दिये। भारतीय चिंतकों ने अतिमानववाद (अरविन्द) नवमानववाद (एम॰ एन॰ राय) सर्वोदय (गांधी) आदर्श समाज (डॉ॰ राममनोहर लोहिया) की प्ररूपणा दी। इन वादों और प्रयत्नों की छत्रछाया में स्वस्थ समाज संरचना की कल्पना की। अणुव्रत अनुशास्ता श्री तुलसी ने अणुव्रत के माध्यम से स्वस्थ समाज का स्वप्न संजोया। किन्तु कोई भी प्रयत्न अपनी मंजिल तक पहुंचने में सफल नहीं हुआ। इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विमर्श करना आवश्यक है।

बीज है चेतना में

अपराध निरोध के लिए हमारा ध्यान समाज की सुव्यवस्था, कानून और दंडसंहिता पर केन्द्रित है। कुछ आगे बढ़ें तो संस्कार-निर्माण की शिक्षा तक पहुंच जाते हैं। मूल कारण तक पहुंचने की मनोवृत्ति और प्रवृत्ति—दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं है। मूल की खोज का साधन केवल अध्यात्म है। अच्छाई या बुराई—दोनों के बीज चेतना में हैं। चेतना की गहराइयों में गये बिना अपराध निरोध का प्रयत्न बहुत सफल नहीं होता।

चेतना के तीन स्तर हैं—इन्द्रिय चेतना, मनश्चेतना और भावचेतना। इन्द्रिय चेतना में अतृप्ति की तरंग है। मनश्चेतना में चंचलता की ऊर्मि है। भावचेतना में लोभ अथवा तृष्णा का आवेश है। ये सब मिलकर अपराध को जन्म देते हैं। मस्तिष्क की विशिष्ट प्रकार की रचना भी अपराध का हेतु है, किन्तु उसका आधार लोभ का संस्कार है। जिस प्रकार का संस्कार होता है, मस्तिष्क की रचना भी उसी प्रकार की होती है। यह कहना अधिक संगत होगा कि अपराध का मूल लोभ के आवेश की तीव्रता है।

क्यों बढ़ते हैं अपराध ?

अपराध निरोध अथवा सुधार के लिए समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, दण्डशास्त्र, विधिशास्त्र आदि-आदि पर ध्यान केन्द्रित होता है, किन्तु अध्यात्मशास्त्र और योगशास्त्र की विस्मृति बनी रहती है। फलतः बाह्य उपचार होता रहता है। भीतरी शल्य तक पहुंचा नहीं जाता।

कानून और दंडसंहिता की व्यर्थता प्रमाणित करना हमारा लक्ष्य नहीं है। उनकी अपनी सीमा तक उपयोगिता है। रोग का इलाज करना दवा की उपयोगिता है। क्या रोग होता रहे और चिकित्सा चलती रहे, यह पर्याप्त है ? इस अपर्याप्तता की अनुभूति हजारों वर्ष पहले हो चुकी थी। आयुर्वेद के आचार्यों ने लिखा—'रोग न हो, इसकी व्यवस्था करना तथा रोग की चिकित्सा करना आयुर्वेद का लक्ष्य है।' आयुर्विज्ञान (मेडिकल साइंस) का भी यह अभिमत है—'चिकित्सा की अपेक्षा रोग न हो, यह व्यवस्था अधिक उत्तम है।' प्रतीत हो रहा है सामाजिक क्षेत्र में अपराध निरोध के लिए दंडसंहिता को जितना उत्तम उपाय माना है, उतना आध्यात्मिक शिक्षण और प्रशिक्षण को नहीं माना गया। अपराध की बढ़त उसी का परिणाम है। यदि दंडसंहिता के साथ-साथ आध्यात्मिक शिक्षा की विधि प्रचलित होती तो अपराध की मात्रा में अधिक कमी आ जाती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विकृत चेतना और अपराध

अपराध की आन्तरिक प्रेरणा है—लोभ, राग और द्वेष। उसकी बाह्य प्रेरणा है—अर्थ का अर्जन और संग्रह तथा सत्ता पर अपना अधिकार स्थापित करना। बाहरी प्रेरणा पर अंकुश लगाने की चेष्टा होती रहती है, किन्तु उसकी आन्तरिक प्रेरणा पर्दे के पीछे रह जाती है। यह सचाई किसी संप्रदाय या मतवाद की सचाई नहीं है, यह विशुद्ध आध्यात्मिक सत्य है। इस ओर ध्यान देकर ही अपराध की मात्रा को कम किया जा सकता है।

अपराध-मुक्ति का सबसे प्रभावी उपाय है—चेतना की विशुद्धि। एक ओर अर्थ का असीम आकर्षण, दूसरी ओर मादक वस्तुओं के सेवन का बढ़ता हुआ आकर्षण, यह वर्तमान युग की मनोदशा का सही चित्रण हो सकता है। विकृत चेतना और अपराध के व्याप्ति संबंध को नकारना कोई बुद्धिमानी नहीं है। बुद्धिमानी यह होगी कि शिक्षा के व्यापक स्वरूप पर विचार करें, निर्माण की प्रक्रिया को गतिशील बनाएं।

संदर्भ शिक्षा का

मनोरचना के बिना समाज रचना का स्वप्न कभी सफल नहीं हो सकता। क्या शिक्षा में मनोरचना के तत्त्व हैं ? आर्थिक प्रलोभन और मादक वस्तुओं से बचने की मनोवृत्ति के उपायों का निर्देश है ? सुविधावाद और बड़प्पन के मानदण्ड शिखर को छू रहे हों और आर्थिक अपराध न हों, यह कब संभव है ? मादक वस्तुओं का बाजार उन्मुक्त हो और चारित्रिक अपराध न हों, यह कब संभव है ? आश्चर्य है—शिक्षा के पवित्र क्षेत्र में चेतना के रूपान्तरण की कल्पना करें, उसी क्षेत्र में चेतना को विकृत बनाने वाली मादक वस्तुओं का संसर्ग मिले।

समस्या की गंभीरता है। अपेक्षित है गंभीर चिंतन। थाली के जल में नौका चलाने की बात न सोचें।

मादक वस्तु और अपराध

मादक वस्तुओं का सेवन स्वयं एक अपराध है और वह अपराध, जो अपराधी प्रवृत्तियों को जन्म देता है। मादक वस्तुओं के प्रयोग की अभीप्सा का हेतु है—गरीबी और तनाव। तनाव की बीमारी गरीब और अमीर—दोनों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में है। गरीब अभावजनित चिंता के कारण तनाव में रहता है, अमीर धन की सुरक्षा की चिंता में तनावग्रस्त होता है। कोई भी व्यक्ति तनाव का जीवन जीना नहीं चाहता। वह शांति चाहता है, मन की प्रसन्नता चाहता है। तनाव इन सबको लील जाता है। इसे दूर करने के लिए व्यक्ति नशे की शरण में जाता है। उसकी मूर्च्छा में कुछ क्षण बिताकर शान्ति का अनुभव करता है। मस्तिष्कीय प्रशिक्षण और ध्यान के प्रयोगों द्वारा चिंताजनित तनाव को दूर किया जा सकता है, मादक वस्तु के सेवन की मनोवृत्ति को भी बदला जा सकता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली मस्तिष्क के बायें पटल को जागृत करने में सक्रिय है, मस्तिष्क का दायां पटल उपेक्षित है इसलिए अपराधी मनोवृत्ति को विकसित होने का अवसर मिल जाता है। शिक्षा मस्तिष्कीय पटलों के संतुलित विकास की संवाहक बने तो अपराधी मनोवृत्ति के उन्मूलन में पर्याप्त सफलता मिल सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पारिवारिक जीवन और शान्त सहवास

यदि दुनिया में आदमी अकेला होता तो कोई लड़ाई-झगड़ा और संघर्ष नहीं होता, अशान्ति नहीं होती। किन्तु ऐसा नहीं है, अनेक लोग हैं। अनेक में पांच अरब भी हो सकते हैं, दस अरब भी हो सकते हैं। एक से दो होने का मतलब ही है द्वन्द्व का पैदा होना। संस्कृत कोश में द्वन्द्व का एक अर्थ है—जोड़ा। द्वन्द्व का दूसरा अर्थ है लड़ाई। दो और लड़ाई—ये दोनों पर्यायवाची बन गये। जहां दो हैं, वहां लड़ाई होना अनिवार्य मान लिया गया। जहां एक से दो बना, वहां साथ-साथ लड़ाई ने भी जन्म ले लिया। जहां दो हुए, वहां रुचि भिन्न हो जायेगी, विचार भिन्न हो जायेगा। रुचि का भेद, विचार का भेद, चिंतन का भेद और क्रिया का भेद। इतना विवेक प्रत्येक आदमी में नहीं होता कि वह विचार भेद को मनभेद न बनाए। ये भेद मनभेद के कारण बनते हैं और लड़ाई शुरू हो जाती है। दो का मतलब है संघर्ष, टकराहट। दो हथेलियां मिलीं, रगड़ हुई, शब्द पैदा हो गया।

अहिंसा का विकास

दो होकर रहना संघर्ष में जीना है और यह बड़ी समस्या होती है। उपाय खोजा गया—दो में रहें, अनेक में रहें किन्तु एक होकर रहें, जिससे संघर्षण न हो, लड़ाई और अशान्ति न हो। प्रश्न है—यह कैसे संभव हो सकता है ? इसका एक उपाय है धर्म। जिस व्यक्ति ने धर्म को समझा है, वह अनेक में भी एक बन कर रह सकता है, समूह और समुदाय में रहकर शान्तिपूर्ण जीवन जी सकता है। इसके लिए अहिंसा का प्रयोग किया गया। यदि अहिंसा का प्रयोग नहीं होता तो समाज नहीं बनता, दो आदमी समाज में एक साथ नहीं रह सकते। समाज बना अहिंसा के आधार पर। उसका सूत्र है—साथ-साथ रहो, तुम भी रहो और मैं भी रहूं। या तुम, या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मैं—यह हिंसा का विकल्प है। पहले साम्यवाद का यह नारा था—'साम्यवाद और लोकतंत्रवाद—दोनों एक साथ नहीं रह सकते। या साम्यवाद रहेगा या लोकतंत्रवाद अथवा पूंजीवाद रहेगा। किन्तु आज यह नारा बदल गया।

सहावस्थान

प्राचीन कहानी है—एक राजा की कन्या ने अपने पिता से कहा—'या तो रेखला रहेगा, या मैं रहूंगी। हम दोनों एक साथ नहीं जी सकते।' राजा को उस निरपराध युवक को मारने का आदेश देना पड़ा। यह प्रयोग बहुत चलता है—या तुम या मैं। हम दोनों एक साथ नहीं रह सकते। यह हिंसा का प्रयोग है। जहां अहिंसा का प्रयोग होगा, वहां भाषा बदल जायेगी, स्वर बदल जायेगा। व्यक्ति कहेगा—तुम भी रहो, मैं भी रहूं, हम दोनों साथ रह सकते हैं, कोई बाधा नहीं है। अनेकान्त में इस सूत्र का बहुत विकास हुआ, जिसे कहा जा सकता है सहावस्थान। एक होता है सहावस्थान, दूसरा होता है सहानवस्थान। आग और पानी दोनों एक साथ नहीं रह सकते। जहां आग है, वहां पानी नहीं और जहां पानी है, वहां आग नहीं। इसे कहा जा सकता है—सहानवस्थान किन्तु अनेकान्त ने इस बात को नहीं स्वीकारा। अनेकान्त दर्शन के अनुसार आग और पानी भी एक साथ रह सकते हैं। ऊष्मा और ठंडक दोनों सापेक्ष हैं, दोनों एक साथ रह सकते हैं। प्रकाश और अंधकार—दोनों एक साथ रह सकते हैं।

एक आदमी बैठा है। दिन में बादल छा गये। दो बजे का समय है। कमरे में भी अंधेरा छा गया। किसी ने कहा—'लो, पुस्तक पढ़ो।' उसने कहा—'नहीं, अभी तो अंधेरा है। मैं नहीं पढ़ सकता। उसी समय उसे पानी का गिलास देते हुए किसी ने कहा—'पानी पियो।' उसने गिलास हाथ में लिया और पानी पी गया। पूछा—'पानी कैसे पी लिया ?' वह बोला—'पानी के लिए अंधेरा नहीं है, सूक्ष्म अक्षर पढ़ने के लिए अंधेरा है। यदि मोटा अक्षर पढ़ने के लिए दिया जाए तो उसके लिए भी अंधेरा नहीं है।'

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक इकाई है परिवार

सापेक्ष बात है अंधेरा है भी और नहीं भी। दोनों बातें सच हो सकती हैं। अनेकान्त दर्शन में विरोध जैसी कोई बात नहीं है। दो विरोधी धर्म एक साथ रह सकते हैं तो दो विरोधी विचार एक साथ क्यों नहीं रह सकते ? विरोध में सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। जो व्यक्ति दूसरे के साथ सामंजस्य स्थापित करना नहीं जानता, वह परिवार में रहकर शान्तिपूर्ण जीवन नहीं जी सकता। परिवार एक छोटी इकाई है। परिवार अहिंसा का एक छोटा प्रयोग है। सबसे पहला और छोटा प्रयोग कहीं करना है अहिंसा का तो परिवार में किया जा सकता है। जो व्यक्ति परिवार में रहते हुए अहिंसा का प्रयोग नहीं करता, वह धार्मिक कैसे हो सकता है ? अहिंसक कैसे हो सकता है ? परिवार में रहता है, धर्म भी करता है और दिन भर लड़ाइयां भी करता है, वह कैसा धार्मिक है ? ऐसे धार्मिक को देखकर ही एक युवक इस भाषा में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है—'मेरे पिताजी अपने को धार्मिक मानते हैं, पांच-सात सामायिक करते हैं, दिन का अधिकांश समय साधुओं के स्थान पर बिताते हैं, पर हमारे घर में सबसे ज्यादा लड़ाइयां भी वही करते हैं। यदि मुझे लड़ाई करना सीखना है तो बाजार बहुत बड़ा है। धर्मस्थान में जाकर लड़ाई क्यों सीखूं ?

धर्म का पहला पाठ

यह बात केवल एक युवक की नहीं है। न जाने कितने लोगों के साथ ऐसा बीतता होगा। बहू के प्रति सास के मन में और सास के प्रति बहू के मन में, पिता के मन में पुत्र के प्रति और पुत्र के मन में पिता के प्रति इस प्रकार का विकल्प पैदा होता है कि यह इतना धर्म करता है और इतनी लड़ाइयां करता है तो कैसा धर्म करता है ? क्या धर्म यही सिखाता है ? सामायिक और लड़ाई—दोनों साथ नहीं चल सकते। या तो सामायिक होगी या लड़ाई। दोनों साथ में कैसे होंगे ? यदि दोनों को चलाना है तो फिर धर्म करने का मतलब क्या है ?

धार्मिक व्यक्ति को जो सबसे पहला पाठ पढ़ना है, वह है अहिंसा और अनेकान्त का पाठ। अनेकान्त का पहला प्रयोग है सामंजस्य बिठाना। दो विरोधी विचारों में सामंजस्य, दो विरोधी रूढ़ियों में सामंजस्य।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यदि सामंजस्य नहीं होता है तो छोटी बात भी लड़ाई का कारण बन जाती है।

क्यों होते हैं संघर्ष ?

मान लीजिए रोटी खाने के लिए व्यंजन बनाना है। एक व्यक्ति कहता है—मुझे तो करेला बहुत अच्छा लगता है। दूसरा कहता है—मुझे करेला बहुत कड़वा लगता है। मैं नहीं खाऊंगा। इस छोटी-सी बात को लेकर भी बहुत झंझट खड़ा हो जाता है। यह रुचि-भेद जनित संघर्ष है। संघर्ष काल्पनिक भी होता है। पति-पत्नी के बीच झगड़ा हो गया। पत्नी ने कहा—'मैं लड़के को डॉक्टर बनाऊंगी। पति ने कहा—नहीं, मैं उसे वकील बनाऊंगा। लड़ाई इतनी तेज हो गयी कि पड़ोसी इकट्ठे हो गए। एक समझदार व्यक्ति ने कहा—'अरे, लड़ क्यों रहे हो ? पहले लड़के का मन भी तो जान लो।' पत्नी बोली—'लड़का तो अभी पैदा ही नहीं हुआ है।

इस प्रकार अहेतुक लड़ाइयां, जिनका कोई आधार नहीं, परिवारों में चलती हैं। इसलिए चलती हैं कि सामंजस्य बिठाना नहीं जानते, समझौता करना नहीं जानते और व्यवस्था को नहीं जानते। हम इन तीन सूत्रों पर ध्यान दें—सामंजस्य, समझौता और व्यवस्था। अगर इन तीनों सूत्रों पर ध्यान दें तो लड़ाइयां बंद हो जाएंगी। हमने देखा—दो भाइयों में इतना परस्पर प्रेम था कि लोग कहते—'ये तो राम-लक्ष्मण हैं।' किन्तु जब धन का प्रश्न आया, प्रेम टूट गया और ऐसा टूटा कि राम-लक्ष्मण का प्रेम कहीं चला गया। आपस में इतना वैमनस्य हो गया, जितना राम और रावण में भी नहीं रहा होगा।

व्यवस्था

व्यवस्था के अभाव में ऐसी स्थितियां बनती हैं। जहां व्यवस्था नहीं है, वहां संघर्ष का होना अनिवार्य है। अव्यवस्था में लड़ाई की संभावना निरंतर बनी रहती है। चाहे परिवार को देखें, चाहे सभा, संस्था या संगठन को देखें और चाहे किसी धर्म-संप्रदाय को देखें। जहां व्यवस्था का अभाव है, वहां लड़ाई-झगड़े का अवतरण निश्चित है। जिस परिवार का मुखिया समझदार होगा, वह व्यवस्था पर सबसे पहले ध्यान देगा। जहां व्यवस्था नहीं, वहां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दो भाइयों का आपसी प्रेम भी वैसे ही फट जाता है, जैसे नींबू की कुछ बूंदों से गर्म दूध। एक भाई ने सोचा—इनके इतनी लड़कियां हैं, शादी में इतना रुपया खर्च हो गया। मेरे तो कोई लड़की है नहीं, मैंने तो कुछ खर्च ही नहीं किया। जो खर्च हुआ है, जो कर्ज सिर पर चढ़ा है, सब इसके सिर पर चढ़ा है। इसके पास कुछ जमा है नहीं, सब कर्जा ही कर्जा है।' यह चिंतन दो सहोदर भाइयों के भ्रातृत्व संबंधों में दरार पैदा कर देता है।

अव्यवस्था का परिणाम

दिल्ली का एक व्यक्ति राजनीति में बहुत भाग लेता था। एक दिन उसने कहा—'महाराज ! मैं तो बिल्कुल मारा गया।' हमने पूछा—'क्या हुआ ?' वह भाई रोने लगा। बहुत मुश्किल से आंसू पौंछते हुए बोला—हम चार भाई हैं। हमारी कितनी बड़ी दुकान है। बहुत बड़ा व्यवसाय है। मैं तो राजनीति में रहा। दूसरे भाई दुकान में बैठते रहे। आज भाइयों ने कहा—'तुम्हारे सिर पर इतना कर्जा है, तुम्हारे हिस्से में कुछ भी नहीं है। वे कह रहे हैं—तुम इस घर से निकल जाओ।'

हम लोग भी कल्पना नहीं कर सके कि इतना अच्छा आदमी इस प्रकार कैसे हो गया ? किन्तु ऐसा होता है और इसलिए होता है कि सम्यक् व्यवस्था नहीं है। जहां ठीक व्यवस्था नहीं होती, वहां ऐसी ही स्थिति पैदा होती है।

समझौता

दूसरी बात है—समझौता। व्यक्ति समझौता करना नहीं जानता है तो छोटी-सी घटना की गांठ बन जाती है। जब तक गांठ खुलती नहीं, समस्या सुलझती नहीं है। समझौते के बिना दुनिया में कभी काम नहीं चलता। महायुद्ध होता है, बड़ी-बड़ी लड़ाइयां होती हैं, तो भी समझौता और संधि होती है। सामान्य आदमी भी ऐसी बात पकड़कर बैठ जाता है और इस भाषा में सोचता है—मैं तो ऐसा करना ही नहीं चाहता, सुनना ही नहीं चाहता। जहां अपनी बात का इतना आग्रह होता है, समझौता करने की मनोवृत्ति नहीं होती, वहां परस्पर लड़ाइयां चलती हैं। सामंजस्य और समन्वय करना जरूरी है। एक बढ़ई भी जब अपना काम करता है, कमरे में खिड़कियां

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चढ़ाता है तो वह दो किवाड़ बनाकर सीधा नहीं चढ़ाता। किवाड़ बनने के बाद काट-छांट करनी पड़ती है। कभी इस खिड़की को काटा जाता है, कभी उस खिड़की को काटा जाता है। कभी नीचे से, कभी ऊपर से और कभी पीछे से काटता है, तब कहीं खिड़कियां सही होती हैं। काट-छांट करना बहुत आवश्यक होता है, सामंजस्य बिठाना होता है। कोई बात एक की माननी होती है तो कोई बात दूसरे की माननी होती है। हर बात में काट-छांट और सामंजस्य बिठाना होता है। ऐसा करके ही व्यक्ति परिवार और समुदाय के साथ चल सकता है।

सहिष्णुता

सामंजस्य, समझौता और व्यवस्था—इन तीनों से भी अधिक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—सहिष्णुता। यह अहिंसा, पारस्परिक सौहार्द और शान्त सहवास का आधार बनता है। समस्या यह है कि आज आदमी एक-दूसरे को सहन करना नहीं जानता। उसका दिमाग ही कुछ ऐसा बना हुआ है कि सहन करना बहुत कम जानता है। बड़ों की बात छोड़ दें, दो-चार वर्ष का छोटा बच्चा भी सहन करना नहीं जानता। उसके भी मन के प्रतिकूल बात होती है तो वह इतना उबल पड़ता है कि शान्ति भंग हो जाती है। एक-दूसरे को सहन किये बिना दो व्यक्ति साथ कैसे रह सकते हैं ? जब तक सहिष्णुता का विकास नहीं होता, तब तक शान्त सहवास की कल्पना भी नहीं की जा सकती। एक-दूसरे की कमजोरी और असमर्थता को सहन करना, अल्पज्ञता और मानसिक अवस्था को सहन करना, दूसरे की कठिनाई और बीमारी को सहन करना होता व्यक्ति जब इन सबको सहन करता है, तब परिवार में शान्ति रह सकती है। सहन बिल्कुल नहीं करता है तो अशान्ति ही अशान्ति।

अर्थ सहिष्णुता का

आज सहिष्णुता का अर्थ गलत समझ लिया गया। सहिष्णुता का अर्थ न कायरता है, न कमजोरी और न दब्बूपन। सहिष्णुता महान् शक्ति है। बहुत शक्तिशाली आदमी ही सहिष्णु हो सकता है। कमजोर आदमी कभी सहिष्णु नहीं हो सकता। कमजोर सहन कर ही नहीं सकता। सहन करने का मतलब

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है शक्ति का विकास, शौर्य और पराक्रम का विकास। पूज्य गुरुदेव की अनुभवपूरित वाणी है—'एक आचार्य को जितना सहन करना होता है, सामान्य मुनि को उतना सहन करना नहीं होता। आचार्य को बहुत सहन करना पड़ता है। सामान्य मुनि तो समय पर कभी-कभी आवेश में भी आ जाता है, किन्तु आचार्य को वहां शान्त रहना होता है। वे जानते हैं—छोटा मुनि आवेश में है, अभी इसे शान्तभाव से सहना है। यह बड़प्पन का काम है। आवेश की आग में घी की आहुति नहीं देना है। बड़प्पन है उफनते दूध में पानी का छींटा डाल देना, जिससे उफान को उपलब्ध दूध नीचे ढुले नहीं, राख में गिर कर खराब न हो जाए। यह विवेक बड़े में हो सकता है, शायद छोटे में न भी हो। घर के मुखिया व्यक्ति सहिष्णु नहीं होते हैं तो परिवार टूटने-बिखरने लगता है, परस्पर झगड़े चलते हैं।

मार्मिक उत्तर

सहिष्णुता का महत्त्व क्या है ? इसका एक निदर्शन चीन के प्रधानमंत्री का यह मार्मिक उत्तर है—'हजार लोगों की रसोई एक साथ इसलिए बन रही है कि मैंने सब कुछ सहा है।' आप कल्पना करें, हजार लोगों की रसोई एक साथ बने। हजार लोगों के लिए एक स्थान पर चूल्हा जले। आजकल तो इतनी बड़ी बारातें भी नहीं आतीं। प्राचीन युग में तो दो-दो हजार लोगों की बारात आ जाती थी, पर आज यदि हजार लोगों की बारात आ जाए तो मुसीबत आ जाए। संभव नहीं है। इतने लोगों का एक साथ भोजन कैसे होता था, ऐसे परिवारों को हमने देखा है, जिनमें सौ-सौ लोगों की रसोई एक साथ बनती थी। आज ऐसे कितने परिवार मिलेंगे, जिनमें सौ आदमियों की रसोई एक साथ बनती हो। शायद ऐसे परिवार मुश्किल से मिलेंगे। कारण स्पष्ट है परिवार उतने बड़े रहे भी नहीं और लोग साथ रहना जानते भी नहीं। जैसे ही भाइयों की शादी होती है, कुछ समय बाद दो चूल्हे जलते हैं और घर के बीच में दीवारें भी खिंच जाती हैं। एक घर में दीवार खिंची और दो घर बन गये। प्रेक्षाध्यान के शिविरों में सौ आदमियों की रसोई एक साथ बनती है। शिविर भी एक परिवार बनता है। सैकड़ों लोग एक साथ रहते हैं, क्योंकि वहां एक साथ रहने की कला सिखाई जाती है। साथ में कैसे रहा जाए, यह एक बड़ी कला है। जो इस कला को नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जानते, वे शान्त सहवास का आनंद नहीं ले पाते। शान्तिपूर्ण पारिवारिक जीवन का सूत्र है—सहिष्णुता। जितनी विद्याएं और कलाएं हैं, उन सबमें अच्छी कला है सहिष्णुता। जो बहुत कुछ पढ़ जाने पर भी इस कला को नहीं पढ़ता, नहीं सीखता, वह शान्ति के साथ कभी नहीं जी सकता।

विनय और वात्सल्य

शान्त-सहवास का पांचवां सूत्र है—विनय और वात्सल्य। जैन धर्म में विनय को बहुत महत्त्व दिया गया। आज का पढ़ा-लिखा आदमी तो शायद ऐसा सोचता है कि विनम्रता तो गुलामी है। उसका यह चिंतन अहंकार को बढ़ा रहा है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक धर्म और समाज में विनय का महत्त्व रहा है। इसीलिए लिखा गया—'विद्या ददाति विनयम्।' विद्या विनय देती है। पता नहीं आज की विद्या क्या देती है ? वर्तमान युग को देखकर यह कहा जा सकता है—'विद्या ददाति अविनयम्—विद्या अविनय देती है। इससे भी आगे बढ़ें तो विद्या प्रिंसिपल को पीटने का संस्कार देती है, बन्दी बनाने की भावना उत्पन्न करती है और कभी-कभी विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर को भी ऐसे कटघरे में खड़े कर देती है कि उसका उस कटघरे के बाहर निकलना भी मुश्किल हो जाता है। आज की विद्या क्या यही नहीं दे रही है ? हमारी परंपरा विनय की रही है। यह परंपरा हजारों वर्ष पुरानी है। विनय भारतीय संस्कृति का प्राणतत्त्व रहा है किन्तु आज यह बात भी विस्मृत होती जा रही है। जिस परिवार में यह विनय की परंपरा नहीं होती, उसमें शान्तिपूर्ण जीवन नहीं हो सकता।

विनय का दूसरा पहलू

बड़ों के प्रति विनय करना एक पक्षीय बात है। उसका दूसरा पहलू है वात्सल्य। छोटों के प्रति वात्सल्यपूर्ण व्यवहार करना। यह विनय और वात्सल्य एक जोड़ा है। ये दोनों हों, तभी काम चलता है। एक विनय करे और दूसरा वात्सल्य न दे तो विनय भी रूठ जाता है। वात्सल्य मिलता रहे और विनय बढ़ता रहे तो पारिवारिक जीवन में शान्ति का संचार बना रहता है। शान्तिपूर्ण जीवन के ये पांच सूत्र अनेकान्त अथवा सापेक्ष दर्शन से फलित होते हैं। इन पांच सूत्रों पर मनन किया जाए, बहुत गंभीरता से मनन किया जाए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और उनको पाने का अभ्यास किया जाए तो व्यक्ति को पारिवारिक जीवन की अशान्ति से मुक्ति मिल सकती है। केवल इन सूत्रों के उच्चारण से शान्त सहवास कभी संभव नहीं बन सकता।

एक आदमी ने अपने मित्र से पूछा—'मुझे अमेरिका जाना है, वहां जाने में खर्च कितना लगेगा ? उसने कहा—'एक पैसा भी नहीं लगेगा।' उसने कहा—'मुफ्त में ऐसे कौन ले जाएगा ? पैसा तो लगेगा ही।' वह बोला—'मैं जानता हूं, तुम केवल विचार करते हो, मनसूबे बनाते हो, आना-जाना कहीं है नहीं, फिर पैसे कैसे लगेंगे ?

कोरा विचार किया जाए, आचरण न किया जाए तो शान्तिपूर्ण सहवास संभव नहीं हो सकता। सामंजस्य, समझौता, व्यवस्था, सहिष्णुता, विनय और वात्सल्य—इन पांच बातों पर मनन करें तो हम अपने लक्ष्य तक पहुंच पाएंगे, पारिवारिक शान्ति की बात सधेगी।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शान्ति और शक्ति के साथ जीयें

जिसने प्राण धारण किया है, उसे जीना है। जो श्वास लेता है, वह जीता है। श्वास लेकर जीना, रोटी खाकर जीना, पानी पीकर जीना जीना तो है, पर इस तरह जीने का बहुत मूल्य नहीं है। अच्छा जीवन जीना एक मूल्यवान् बात है। अच्छा जीवन कौन जी सकता है ? जिसके जीवन में शान्ति और शक्ति है, वही अच्छा जीवन जी सकता है। शान्ति और शक्ति—ये दोनों बहुत आवश्यक हैं। कोरी शक्ति है और शान्ति नहीं है तो नियमतः मन बेचैन रहेगा। शान्ति से रहना चाहता है और कमजोर है तो भी काम नहीं चलेगा।

एक बहन ने कहा—मैं बहुत अशान्त और परेशान हूं। कुछ उपाय बताएं। मैंने पूछा—'तुम अशान्त और परेशान क्यों हो ? कारण क्या है ?' उसने कारण बताया—एक भाई है, दो लड़के चल बसे। बहू है। लोग बहुत सारी बातें करते हैं।' मैंने कहा—'लोग बातें करते हैं, इस आधार पर जीओगी तो कभी शान्ति से जीया ही नहीं जा सकेगा। इस दुनिया में नाना प्रकार के लोग हैं, नाना कल्पनाओं वाले लोग हैं। अलग-अलग प्रकार की रुचियां, अलग-अलग प्रकार की कल्पनाएं और अलग-अलग प्रकार का चिंतन। अगर ऐसे में हम दूसरों के आधार पर ही जीयेंगे तो फिर शान्ति की बात ही छोड़ देनी चाहिए।

आत्म-विश्वास

वही आदमी शान्ति का जीवन जी सकता है, जिसमें शक्ति होती है। शक्ति का तात्पर्य है अपनी बात पर मजबूत बने रहना। शान्ति और शक्ति के साथ जीने का पहला सूत्र है—आत्मविश्वास। अपने पर भरोसा होना चाहिए। हमारी कठिनाई यह है कि जितना भरोसा हमें दूसरों पर है, उतना स्वयं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर नहीं है। इसलिए हमेशा कान भरे जाएंगे कि दूसरा तुम्हारे बारे में क्या कहता है ? दूसरा जो कहता है, वह कहता है, पर तुम्हारी आत्मा तुम्हारे बारे में क्या कहती है ? तुम अपने आपसे क्या कहते हो ? दूसरे की अपनी इच्छा है। तुम एक काम करते हो, संभव है, वह दूसरे को अच्छा न लगता हो। सबका अलग-अलग चिंतन है। चिंतन की इतनी स्वतंत्रता और विविधता है कि कहीं किसी को बांधा नहीं जा सकता। अगर दूसरों के चिंतन के आधार पर हम अपने आपको देखें तो कभी शान्ति का जीवन जीया नहीं जा सकेगा। शान्ति का जीवन जीने के लिए शक्ति का जीवन जीना बहुत जरूरी है। जिस व्यक्ति में शक्ति नहीं है, जो कमजोर और कायर है, वह शान्ति का जीवन नहीं जी सकता। वह बात-बात पर प्रभावित हो जायेगा। दूसरों की बात से स्वयं को बचा सके, यह तभी संभव है जब व्यक्ति शक्तिशाली हो। इसलिए पहले शान्ति की नहीं, शक्ति की साधना जरूरी है। इस दुनिया में उसी को जीने का अधिकार होता है, जो शक्तिशाली है। विकासवाद या इवोल्यूशन का यह सिद्धान्त ही है—जो शक्तिशाली होता है, वही इस दुनिया में जीता है, जो कमजोर होता है, वह समाप्त हो जाता है। शक्तिशाली वही होता है, जिसे अपना भरोसा हो। दूसरों के भरोसे पर जीने वाला कभी शक्तिशाली नहीं होता। उसे दूसरा कभी भी धोखा दे सकता है।

दो बूढ़े आदमी जंगल की ओर जा रहे थे। गांव के बाहर एक कुआं आया। वे कुएं पर ठहर गए, सोचा—यहीं पानी पियेंगे, स्नान करेंगे, पुराने जमाने में बाथरूम नहीं होते थे। कुएं की फर्श ही बाथरूम होती थी। एक ने कुएं से पानी निकाला और स्नान करने लगा। दूसरा कुएं की गहराई देखने के लिए कुएं में झांकने लगा। अकस्मात् पैर फिसला, वह कुएं में गिर गया। कुआ पुराना था। उसकी दीवार में एक पेड़ उगा हुआ था। उसने पेड़ की शाखा को पकड़ लिया और सहायता के लिए आवाज लगाई। दूसरे ने दौड़ कर देखा—उसका साथी कुएं में पेड़ को पकड़े लटक रहा है। उसने कहा—जल्दी से बाजार जाओ, मजबूत रस्सी लेकर आओ, तब तक मैं किसी तरह इस पेड़ को पकड़े लटका हूं। वह बाजार गया, घूमधाम कर दो घंटे बाद लौटा। कुएं में लटक रहे आदमी ने कातर स्वर में पूछा—'रस्सी ले आए ? वह बोला—'नहीं भाई, रस्सी तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं लाया। मैं क्या करता ? आज के व्यापारी इतने लोभी बन गए हैं कि दो-चार आने की रस्सी का दो रुपया मांगते हैं। ऐसी लूट मची है, मैं रस्सी कैसे लाता ?

सामाजिक जीवन की सचाई

दूसरे के भरोसे कभी काम नहीं चलता। अपना भरोसा ही काम देता है। कितना भी निकट का सहयोगी हो, काम तभी आयेगा, जब खुद का भरोसा है। सबसे बड़ी बात है स्वयं में आत्मविश्वास पैदा करना। सामाजिक जीवन की एक बड़ी कठिनाई यह है—मापदण्ड सारा दूसरों पर आधारित है। चाहे विवाह का प्रसंग हो या पार्टी का, कपड़े पहने जाएंगे तो दूसरों की पसंद के। यह देखा जाता है—लोग कौन-सी डिजाइन को पसंद करते हैं। अपनी पसंद-नापसंद का कोई प्रश्न नहीं, बस दूसरों को अच्छा लगना चाहिए। दूसरा कहे, अच्छा है तो अच्छा है। दूसरा कहे—खराब है तो स्वयं की दृष्टि में अच्छा होते हुए भी वह खराब है। मैंने बहुत सारे लोगों से पूछा—'भाई ! तुम इतना आडम्बर क्यों करते हो ? आज इन बातों का कोई महत्त्व नहीं है, फिर भी तुम ऐसा क्यों करते हो ?' वे कहते हैं—'महाराज ! हम भी जानते हैं कि यह अच्छी बात नहीं है, ऐसा करना ठीक नहीं है पर करें क्या ? अगर हम ऐसा नहीं करेंगे तो दूसरे लोग टिकने नहीं देंगे, सिर उठा कर चलने नहीं देंगे।'

कठपुतली न बनें

इसका मतलब यह है—आदमी दूसरों के हाथ की ऐसी कठपुतली है, जिसे वे चाहें जैसा नचाएं। ऐसा खिलौना है, जिसे चाहें जैसा चलाएं। दूसरों के हाथ की कठपुतली बनना, खिलौना बनना, अपने भाग्य के साथ खिलवाड़ करना है। ऐसा वही आदमी करता है, जिसे अपने आप पर भरोसा नहीं है। जो आत्मविश्वासी होगा, वह यह नहीं सोचेगा कि दूसरे क्या कहेंगे। उसे जो करना है, वह करेगा। पहले चिंतन करें, विचार करें, हिताहित सोचें, निर्णय लेने में पूरी सावधानी बरतें, किन्तु चिंतनपूर्वक जो करने का निश्चय कर लिया, उसे बस करना है, फिर रुकना नहीं है। दूसरे क्या कहेंगे, यह बात ही गौण कर देनी चाहिए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा अपना अनुभव है। पूज्य गुरुदेव ने धर्मसंघ में बहुत सारे परिवर्तन किये। पहले चिंतन किया। चिंतन के बाद लगा--इस परंपरा को अब बदल देना चाहिए, अब इसका कोई अर्थ नहीं रहा तो फिर उसे बदल ही दिया। कोई कुछ भी कहता रहे, फिर कोई फर्क नहीं पड़ा। यदि हमने सोच-विचार कर कोई काम किया है तो दूसरों के कहने से क्या होगा और सोच-विचार कर नहीं किया है तो फिर उसका कोई मतलब ही नहीं है। आत्मविश्वास होना बहुत जरूरी है और वही व्यक्ति शक्ति और शांति का जीवन जी सकता है, जिसमें आत्मविश्वास होता है।

सनकी स्वभाव से बचें

शक्ति का जीवन जीने का दूसरा सूत्र है सनकी स्वभाव से बचना। सनकी स्वभाव का व्यक्ति अपनी कल्पना से अशुभ का निर्माण कर लेता है। कोई वास्तविकता नहीं होती। मन ही मन कल्पना करता है और वह कल्पना भी बहुत अशुभ सिद्ध होती है। यह सनकी स्वभाव है। बहुत सारे लोगों में यह सनक की आदत होती है। यह सनकी स्वभाव जीवन को शक्तिशाली नहीं बनने देता। कुछ लोगों में वहम भी बहुत होता है। इतने दिन हो गये, अभी तक कोई समाचार नहीं आया, न जाने क्या बात हो गयी। नींद हराम हो जाती है। यह अपने मन की कमजोरी है। मन इतना दुर्बल होता है कि कोई आशंका सहन नहीं होती। यह ज्यादा संदेह, ज्यादा वहम और कल्पना के घोड़े दौड़ाना--ये सब आदमी को कमजोर बनाते हैं। श्वासप्रेक्षा का अभ्यास मूल्यवान् इसीलिए है कि इससे हम वर्तमान में जीना सीखते हैं। जब वर्तमान में जीना सीख लेते हैं तब अनावश्यक कल्पनाओं को रोक लेते हैं। ये अनावश्यक कल्पनाएं आदमी को भीतर और बाहर दोनों ओर से इतना कमजोर बना देती हैं कि जीना शान्तिमय नहीं रहता। शक्ति का तात्पर्य है--अपनी कल्पनाओं को भी रोकने की शक्ति होनी चाहिए। यह विवेक जागृत रहे--यह कल्पना करनी है और यह कल्पना नहीं करनी है। जैसे ही मन में कोई बुरी कल्पना आये, तत्काल उसे मन से निकाल देना चाहिए। इसके लिए प्रयोग करें दीर्घश्वास का, कायोत्सर्ग और ज्योतिकेन्द्र प्रेक्षा का जिससे वह कल्पना मन में प्रवेश न कर पाए।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन क्यों टूटता है ?

कमजोर कल्पनाओं के कारण मन टूटता है। बुरी कल्पनाएं मन को बहुत विकृत कर देती हैं। भय मन को बहुत कमजोर बनाता है। भय एक बीमारी है, जिसे मानसिक चिकित्सक 'फोबिया' कहते हैं। फोबिया अर्थात् निरंतर बिना कारण डरते रहना। मैंने देखा है, सुना है—स्त्रियां चूहे से बहुत डरती हैं। वे जानती हैं कि चूहा उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता, किन्तु चूहे को देखते ही वे भयभीत हो जाती हैं। बिल्ली से डरती हैं। यह एक मानसिक बीमारी है। इस बीमारी से मन बहुत कमजोर बन जाता है। जब मन कमजोर है तब फिर आप शान्ति की बात कैसे करेंगे ? शान्ति कोई ऐसी चीज तो नहीं है कि कमजोर और अशान्त व्यक्ति को सीधे पकड़ा दी जाये। मूर्त्त वस्तु के अभाव की पूर्ति की जा सकती है, किन्तु शान्ति अमूर्त्त चीज है, उसे सीधा कोई किसी को हस्तान्तरित नहीं कर सकता। चाहे कितना ही बड़ा साधक हो, योगी हो, महात्मा हो, यह नहीं कह सकता कि यह लो, मैं तुम्हें शान्ति देता हूं। वह शान्ति का उपाय बता सकता है, किन्तु प्रत्यक्षतः शान्ति कोई किसी को दे नहीं सकता। शक्ति का विकास स्वयं में करना होगा, तभी शान्ति आयेगी। इसीलिए जो बातें मन को दुर्बल बनाने वाली हैं, कमजोर बनाने वाली हैं, उन बातों से बचने का अभ्यास करना होगा। यदि हम उनसे बचेंगे तो अशान्ति वाली बात सामने नहीं आयेगी। जब मन शान्त होता है, तब वह अनेक कठिनाइयों, विषमताओं और उपद्रवों को झेल लेता है। यदि कपड़ा नया है, मजबूत है तो वह ऊपर से गिरने वाले पत्थर को झेल लेता है। यदि वह जीर्ण-शीर्ण और पुराना है तो मामूली-सा दबाव भी झेल नहीं पायेगा। हमारा मन अगर मजबूत है तो अपने आस-पास होने वाली तमाम घटनाओं को हम झेल लेंगे। मन कमजोर है तो थोड़ी-सी बात आते ही इतने अशान्त और कमजोर हो जाएंगे कि जीना दूभर हो जायेगा।

दुःख देता है दुर्बल मन

वस्तुतः कोई घटना दुःख नहीं देती है, दुःख देता है हमारा कमजोर और दुर्बल मन। यह महत्त्व की बात है कि घटना से दुःख नहीं होता। दुःख होता है अपने मन की कमजोरी से। मन कमजोर है तो राई जितनी छोटी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

घटना भी पहाड़ बन जाती है। मन मजबूत है तो पहाड़ जैसी घटना भी राई जैसी मालूम पड़ती है। प्रश्न है मन की दुर्बलता और प्रबलता का। हम हमेशा अपनी अशान्ति की व्याख्या घटना के साथ जोड़ कर करते हैं। इस भाषा में सोचते हैं—इतनी बड़ी घटना हो गयी, जिससे मन बहुत अशान्त बन गया। हम इस बात को भुला देते है कि बीच में एक और घटक है, वह घटक है मन। प्रत्येक घटना मन से छनकर आती है। यदि मन शक्तिशाली है तो वह किसी भी प्रकार की घटना को बहुत छोटा बना देगा। मन कमजोर है तो छोटी बात भी बहुत बड़ी बन जायेगी।

मन को मजबूत बनाएं

घटना पर हमारा कोई वश नहीं है, नियंत्रण नहीं है, वह हमारे रोके रुक भी नहीं सकती। इतनी बड़ी दुनिया है। कहीं न कहीं कुछ न कुछ घटित होता ही रहेगा। इस धरती पर रेल, प्लेन, मोटर, कारें, बसें, ट्रकें आदि परिवहन के साधन दिन-रात दौड़ रहे है। जल, थल और आकाश में इतनी यांत्रिक चीजें सतत चल रही है तो दुर्घटना कहीं भी कभी भी अवश्यंभावी है। क्या इस तरह की घटनाओं को रोक पाना पूर्ण रूप से हमारे हाथ में है ? नहीं है किन्तु अपने मन को मजबूत बनाना हमारे हाथ में है। हम मन को इतना मजबूत बना लें कि घटना हमें अशान्त और दुःखी न बना सके। उसका प्रभाव हो भी तो इतना नहीं कि जीवन भारभूत बन जाये। मन को मजबूत बनाने का यह एक सूत्र हाथ लग जाए तो अशांति की समस्या कभी उग्र नहीं बन सकती।

क्या तुम रह पाओगे ?

पुराने जमाने की बात है। एक राजकुमार लोगों के साथ बहुत कड़ा व्यवहार करता था। प्रजा उससे बहुत परेशान थी। राजतंत्र में राजा शक्तिशाली होता है। महाराजा के पास राजकुमार के अत्याचार की शिकायतें पहुंचीं। वह महाराजा का इकलौता पुत्र था। राजा बड़े पशोपेश में पड़ गये। उसे दंडित करें तो कैसे ? राजा ने सोचा—ऐसे तो वह मानेगा नहीं, रास्ते पर आयेगा नहीं, मेरे संन्यासी गुरु अवश्य ही उसे सन्मार्ग पर ला सकते हैं। राजा गुरु की शरण में गया, नमस्कार कर बोला—'महाराज ! मेरे पुत्र में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एक बहुत बुरी आदत है। वह दूसरों के साथ बड़ा क्रूर व्यवहार करता है। आप उसे समझाएं। दूसरों के समझाने से तो वह मानेगा नहीं। संन्यासी ने राजा को आश्वासन दे दिया। एक योजना बनाई। संन्यासी राजा के साथ जंगल में गया। राजकुमार और दूसरे सुरक्षा कर्मचारी साथ में थे। सामने एक नीम का पेड़ आया। संन्यासी ने उसकी ओर संकेत कर कहा—'जाओ, उस पेड़ से दस-बीस पत्तियां तोड़ कर लाओ।' आज्ञा का पालन हुआ। संन्यासी ने पत्तियां हाथ में लीं और राजकुमार को देते हुए कहा—'राजकुमार ! इन पत्तियों को तुम खाओ।' राजकुमार ने जैसे ही उन पत्तियों को मुंह में रखकर चबाया, मुंह एकदम कड़वा हो गया। राजकुमार को बहुत बुरा लगा, किन्तु गुरु का आदेश था इसलिए वह कुछ कह नहीं सका। दूसरे दिन फिर वही क्रम योजनाबद्ध ढंग से चला। सब जंगल में उसी स्थान पर बैठे। संन्यासी ने कहा—'कल यही वह पेड़ था, जिसकी पत्तियों को राजकुमार ने चखा था, आज वह दिखाई नहीं दे रहा है।

राजकुमार ने कहा—'गुरुदेव ! उस पेड़ को मैंने कटवा दिया।'

'क्यों ?'

'वह बड़ा कड़वा पेड़ था। ऐसे पेड़ का क्या काम ? इसलिए मैंने कटवा दिया।' संन्यासी ने कहा—'अच्छा किया तुमने; कड़वी चीज इस दुनिया में रहनी नहीं चाहिए। तुम्हारा व्यवहार भी कड़वा है। प्रजाजनों की दृष्टि में तुम भी कड़वे हो। यदि ऐसा वे भी सोच लें कि कड़वी चीज इस दुनिया में रहनी नहीं चाहिए तो क्या तुम रह पाओगे ?'

शक्ति, शांति और सुख

इस प्रेरक बात ने राजकुमार को बिल्कुल बदल दिया। एक बात भी अगर भीतर तक पैठ जाए तो जीवन में बहुत बड़ा परिवर्तन आ सकता है। हम इस बात का गंभीरता से ध्यान दें—हर आदमी शान्ति और सुख का जीवन जीना चाहता है। सुख तब मिलेगा जब शान्ति मिलेगी। शान्ति तब मिलेगी जब शक्ति होगी। सुख, शक्ति और शान्ति—तीनों का संबंध है। सुख की सब सामग्री पास में है, पर मन शान्त नहीं है तो सुख नहीं मिलेगा। मन अशान्त है, उस समय कोई बहुत बढ़िया चीज देकर कहे कि इसे खा लो तो अशान्त व्यक्ति यही कहेगा—मेरा मूड ठीक नहीं है, तुम इसे अपने पास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रखो, मुझे नहीं खाना। वह खायेगा नहीं और खायेगा भी तो उसे स्वाद नहीं आयेगा। एक ओर व्यापार में दस लाख का घाटा लग गया, दूसरी ओर सामने बहुत बड़ा संगीतज्ञ मीठी तान छेड़ता है तो वह उसे बेसुरी लगेगी। मन भीतर में उबल रहा है, बेचैन है तो कोई चीज सुहावनी नहीं लगेगी।

शक्ति का स्रोत

सुख के लिए मन का शान्त होना अनिवार्य है और मन की शान्ति के लिए शक्ति का होना अनिवार्य है। शान्ति का बहुत बड़ा और गहरा संबंध है हमारी मानसिकता के साथ, हमारी भावना के साथ। शक्ति का स्रोत क्या है ? वह है भावना, कषाय पर नियंत्रण। इसे मनोविज्ञान की भाषा में इमोशनल डेवलपमेंट कहते हैं। इमोशन या भावना का विकास होता है तो आदमी में शक्ति आती है। हमारी शक्ति को क्षीण करने वाला मुख्य तत्त्व है इमोशन या आवेग। जितने आवेश आते हैं, वे शक्ति को क्षीण करते हैं। क्रोध का आवेश आया, शक्ति एकदम कम हो जायेगी। अहंकार अथवा वासना का आवेश बढ़ा, शक्ति क्षीण हो जाएगी। आवेश का काम ही है शक्ति को क्षीण करना। शक्तिशाली होने के लिए अपने आवेगों को नियंत्रण में रखना बहुत जरूरी है।

सदाचार और चमत्कार

दुनिया में दो बातें चलती हैं सदाचार और चमत्कार। आदमी को चमत्कार पसंद ज्यादा है किन्तु शक्ति उसमें कुछ भी नहीं है। शक्ति मिलती है सदाचार से। एक आदमी बिना नौका के नंगे पैर पानी पर चला, यह चमत्कार है। जहाज या नौका पानी में चले तो कोई चमत्कार नहीं है, पर एक आदमी पानी पर भूमि की तरह चले तो बहुत बड़ा चमत्कार है। जो भी देखेगा, हैरत में पड़ जायेगा। पर देखने वालों को इससे मिला क्या ? उपलब्धि क्या हुई ? कुछ भी नहीं। पक्षी और यान आकाश में उड़ते हैं, यह कोई चमत्कार नहीं है पर आदमी बिना किसी सहारे के आकाश में उड़े तो बहुत बड़ा चमत्कार है। ऐसे चमत्कार भी हो सकते हैं किन्तु इन चमत्कारों से कुछ मिलने वाला नहीं है। शक्ति अर्जित करनी है तो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदाचार बढ़ाओ। सदाचार है शक्ति और चमत्कार है कोरा प्रदर्शन। लोग फुटपाथ पर मदारी के करतब देखते हैं। उससे मनोरंजन के अलावा कुछ नहीं मिलता। लोगों की यह सहज और स्वाभाविक मनोवृत्ति होती है कि वे चमत्कारों की ओर बड़ी जल्दी आकर्षित होते हैं। किसी ने थोड़ा-सा चमत्कार दिखा दिया, हाथ की सफाई से क्षण भर में कोई मूर्ति निकाल दी या हाथ हवा में लहरा कर भभूत पैदा कर दी, मिठाई का डिब्बा हाजिर कर दिया, बस, लोग उसे सिद्ध मान लेते हैं। आज अनेक बाबाओं के धंधे इसी तरह फल-फूल रहे हैं। एक जादूगर ने आज के एक प्रसिद्ध बाबा को चुनौती भी दे डाली—'जो जो चमत्कार वे दिखाते हैं, उसे मैं भी दिखा सकता हूं। जब भी, जहां भी चाहें, वे साथ-साथ प्रदर्शन कर सकते हैं।' यह योग या अध्यात्म का चमत्कार नहीं, मात्र इन्द्रजाल या हाथ की सफाई है।

चिन्तनीय प्रश्न

चिन्तनीय प्रश्न यह है कि ऐसे चमत्कारों से आम आदमी को मिलता क्या है ? उस बाबा या मदारी को तो यह फायदा मिलता है कि उसकी पूजा-प्रतिष्ठा शुरू हो जाती है। उन चमत्कारों की आड़ में वह लोगों की धार्मिक भावना और आस्था का फायदा उठाकर आर्थिक लाभ भी बड़ी मात्रा में अर्जित कर लेता है, भव्य आश्रम और मोटरकारें खड़ी कर लेता है, किन्तु भोले श्रद्धालु लोगों को झूठी आशीष के अतिरिक्त और मिलता क्या है ? सदाचार जीवन में आता है तो शक्ति मिलती है। अगर पांच मिनट भी मन को एकाग्र करने की विद्या सीख ली तो निश्चय ही मनोबल बढ़ेगा, शक्ति मिलेगी। यह अनुभव भी होगा कि हमें कुछ मिला। जीवन भर चमत्कार देखते चले जाएं तो अन्त तक रोना ही रोना रहेगा, हाथ कुछ नहीं आयेगा। ये दो रास्ते हैं। हमें कौन-सा रास्ता लेना है, यह निर्णय स्वयं अपने हाथ में है। मन को शक्तिशाली और मजबूत बनाने के लिए सदाचार का मार्ग चुनना होगा। प्रश्न है—आचार अच्छा कैसे बन सकता है ? सदाचार का साधन क्या है ? हम मन में निरंतर पवित्र भावों का विकास करें। पवित्र भाव मन में सदाचार लायेगा और शक्ति का संचार करेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समस्या का समाधान स्वयं खोजें

शक्तिसंपन्न बनने के लिए एक और महत्त्वपूर्ण बात है, वह है अपनी समस्या का स्वयं समाधान खोजें। समस्याएं तो आती ही हैं। यह कोई मान कर न चले कि उसके जीवन में कभी कोई समस्या नहीं आयेगी। आज तक कोई आदमी इस धरती पर पैदा नहीं हुआ, जिसे किसी न किसी समस्या का सामना न करना पड़ा हो। यह दुनिया का नियम है कि इसमें जीने वाले के सामने समस्या आयेगी ही। प्रश्न यह है कि वह क्या करे ? इसका उपाय खोजा गया कि समस्या का समाधान करे। समाधान कौन करे ? धर्म का, अध्यात्म का सूत्र यह है कि स्वयं समस्या का समाधान खोजें। प्रेक्षाध्यान का एक प्रसिद्ध सूत्र है—अप्पणाससच्चमेसेज्जा—अपना सत्य स्वयं खोजें। दूसरे का खोजा हुआ सत्य बहुत काम नहीं आता। मैं स्वयं सोचता हूं कि मैं जो बता रहा हूं, वह आपके बहुत काम की बात नहीं है। जब तक आप स्वयं अनुभव नहीं करेंगे, प्रयत्न नहीं करेंगे, मेरे कहने से क्या होगा ? मेरे सत्य को आप अपना सत्य बना लें, तभी बात काम की होगी। अन्यथा केवल उधार की बात होगी। उधार की पूंजी आज नहीं तो कल लौटानी होगी।

अपने भीतर है समाधान

प्रेक्षाध्यान का प्रयोग उधार की पूंजी से उऋण होने का उपाय है। उधार की पूंजी के भरोसे मत रहो, स्वयं की कमाई करो। एक व्यक्ति दीर्घ श्वासप्रेक्षा का प्रयोग करता है। उसे अनुभव होता है। अनुभव कराने वाले का नहीं, अपना ही काम आता है। बच्चा जब तक चलने में असमर्थ है, मां तब तक उसे अंगुली पकड़कर चलना सिखाती है, बाद में वह गिरते-पड़ते स्वयं ही चलना सीखता है।

समस्या को सुलझाने के लिए सबसे अच्छा मार्ग है—स्वयं समाधान खोजना। जब तक इस वृत्ति का विकास नहीं होगा, दुनिया की कोई ताकत हमारी समस्या को सुलझा नहीं सकेगी। एक बहन मोटापे की समस्या से ग्रस्त है। इस समस्या के समाधान का मार्ग बताया जा सकता है किन्तु उसका समाधान स्वयं ही करना होगा। खानपान और श्रम की आदत उसे स्वयं डालनी होगी। जीभ पर नियंत्रण स्वयं रखना होगा। ऐसा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नहीं हो सकता कि उसके स्थान पर कोई यह प्रयोग करे और लाभ उस बहन को मिले। समस्या का समाधान किराये पर होता तो पैसे वालों के सामने कोई समस्या ही नहीं रहती। समस्या का समाधान कहीं बाहर नहीं है, अपने ही भीतर है—जिस दिन यह आस्था प्रगाढ़ बनेगी, शक्ति और शांति पूर्ण जीवन का सूत्र उपलब्ध हो जाएगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कैसे करें संस्कारों का निर्माण ?

व्यक्ति में अच्छाई और बुराई दोनों के बीज विद्यमान होते हैं। ऐसा कोई व्यक्ति नहीं होता, जिसमें केवल अच्छाइयां ही अच्छाइयां हों और ऐसा भी कोई व्यक्ति नहीं होता, जिसमें बुराइयां ही बुराइयां हों। दोनों प्रकार के बीज विद्यमान रहते हैं। यह कहा जाता है—छोटा बच्चा जन्म लेता है। वह खाली पाटी या सादा स्लेट होता है, किन्तु यह गलत बात है। खाली कोई नहीं होता। हर व्यक्ति भरा हुआ होता है। एक छोटे बच्चे के भीतर भी इतना छिपा होता है, इतना भरा होता है, जितना कि एक बड़े में। अन्तर सिर्फ यही है कि बड़े में वे सब बातें अभिव्यक्ति हो जाती हैं। उसके भीतर जो कुछ भरा पड़ा है, वह वाणी के द्वारा, कर्म के द्वारा सामने आ जाता है, छोटे में वे अभिव्यक्त नहीं होतीं, छिपी रहती हैं। अन्तर केवल व्यक्त और अव्यक्त का है। होने और न होने का कोई अन्तर नहीं है।

दोहरा दायित्व

प्रश्न है—प्रकट क्या हो ? सामने क्या आये ? जीवन का अच्छा पक्ष, शुक्लपक्ष प्रकट हो या जीवन का बुरा पक्ष, अंधेरे का पक्ष प्रकट हो, यह हमारे पुरुषार्थ पर निर्भर है। यह निर्माता पर भी निर्भर है कि हम किस पक्ष को उभारें, जिससे संतान अच्छी बन सके। किस पक्ष को दबाएं, जिससे बुराइयां उभर कर ऊपर न आ सकें और वे धीरे-धीरे शान्त या क्षीण हो जाएं, यह है हमारा करणीय कार्य। बच्चा क्या लेकर आया है, इस पर हमारा कोई वश नहीं है। करना इतना ही है कि उसमें जो अच्छाई के बीज विद्यमान हैं, उन्हें उभार कर ऊपर ला सकें। इसमें महिलाओं का दोहरा दायित्व है। पुरुषों का इकहरा दायित्व है। पुरुष का काम है अपने संस्कारों का निर्माण करना। महिला का काम है—अपने संस्कारों का निर्माण करे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और साथ-साथ संतान के संस्कारों का भी निर्माण करे। क्योंकि संतान का संबंध जितना माता के साथ होता है, उतना पिता के साथ नहीं होता। उसे साहचर्य भी जितना माता का मिलता है, उतना पिता का नहीं। बहुत सारे पिता तो ऐसे होते हैं, जो बच्चों को सोया हुआ ही देखते हैं। स्थिति ही कुछ ऐसी बन गयी है—देर रात को जब पिता लौट कर आता है तब तक बच्चा सो चुका होता है और सवेरे जब बच्चा स्कूल जाता है, तब तक पिता सोये रहते हैं।

जरूरी है स्वयं के संस्कारों का निर्माण

किसी ने एक व्यक्ति से पूछा—'तुम्हारा लड़का कितना बड़ा हो गया ?' उसने हाथ फैलाते हुए कहा—'इतना बड़ा।' उसने कहा—महाशय ! बच्चा तो खंभे की तरह बढ़ता है, चारपाई की तरह नहीं। उस व्यक्ति ने कहा—'मैंने उसे सदा पलंग पर सोऐ हुए ही देखा है।'

पिता को हर काम के लिए फुर्सत है, पर बच्चे के संस्कार-निर्माण के लिए फुर्सत नहीं है, किन्तु मां का बच्चे के साथ निरन्तर सम्पर्क रहता है। प्रातःकाल मुनिजी घरों में भिक्षा के लिए गए। बहनों से पूछा—'इतनी जल्दी रसोई बना ली ?' वे बोलीं—'महाराज ! क्या करें, बच्चों को स्कूल जल्दी जाना पड़ता है।' पिता अभी तक सोया ही है और मां ने बच्चों को खाना खिला कर स्कूल भी भेज दिया। यह मां का काम है। आन्तरिक संबंध भी जितना मां का बच्चों के साथ होता है, उतना पिता के साथ नहीं होता। यह एक सहज मनोवृत्ति है। संस्कार-निर्माण करने वाले व्यक्ति को पहले समझ लेना है कि किसका निर्माण करना है ? दूसरे के संस्कारों का निर्माण करने से पहले स्वयं के संस्कारों का निर्माण जरूरी है। स्वयं को संस्कृत बनाकर ही व्यक्ति दूसरों का संस्कार-निर्माण कर पाता है।

स्वार्थ का सीमाकरण

संस्कार निर्माण का पहला सूत्र है—स्वार्थ का सीमाकरण। यह नहीं कहा जा सकता कि स्वार्थ को छोड़ दिया जाए। कोई भी व्यक्ति सर्वथा स्वार्थ को छोड़ नहीं सकता। राजनीतिक प्रणालियों में कितने परीक्षण हो गये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साम्यवादी प्रणाली में कम्यूनों का विकास हुआ, किन्तु उन्हें लौटना पड़ा। यह समझ में आ गया कि वैयक्तिक स्वार्थ की पूर्ति हुए बिना आदमी में कोई अन्तःप्रेरणा नहीं जाग सकती। हमारी सबसे बड़ी अन्तःप्रेरणा है स्वार्थ। वैयक्तिक स्वार्थ होता है तब आदमी बहुत अच्छा काम करता है, मनोयोग से करता है। जहां समूह के लिए करना पड़ता है, वहां मनोवृत्ति दूसरे प्रकार की बन जाती है। वह सोचता है—सब काम कर रहे हैं, मैं अकेला नहीं करूंगा तो क्या फर्क पड़ेगा। इसी तरह दूसरे-तीसरे की मानसिकता बनती जाती है।

प्रेरणा है व्यक्तिगत स्वार्थ

सौधर्म चक्रवर्ती आकाशमार्ग से जा रहा था। सौलह हजार देव उसकी पालकी को उठाए हुए थे। एक देव ने सोचा—इतने लोग लगे हुए हैं, एक मैं छोड़ दूंगा तो क्या होगा ? उसी क्षण यह विचार सोलह हजार देवों के मन में भी संक्रांत हुआ और एक साथ सबने पालकी छोड़ दी। चक्रवर्ती समुद्र में गिर कर डूब गया।

राजा ने एक नव-निर्मित विशाल तालाब को दूध से भरे जाने की राजाज्ञा प्रसारित की। राज्य के हर व्यक्ति को एक-एक लोटा दूध उस तालाब में डालने का निर्देश दिया गया। सबके मन में यह विचार संक्रांत हो गया—मैं एक लौटा पानी डाल दूंगा तो क्या फर्क पड़ेगा ? प्रातः तालाब पानी से लबालब भरा था।

जहां कम्यून है, समुदायवाद है, वहां प्रेरणा दूसरा काम करती है। इसीलिए जहां आर्थिक विकास का प्रश्न था, प्रजातंत्रीय प्रणाली में जितना विकास हो सका, व्यक्तिगत संपत्ति की स्वतंत्रता में जितना विकास हो सका, उतना नियंत्रित प्रणाली में नहीं हो पाया।

व्यक्तिगत स्वार्थ एक बहुत बड़ी प्रेरणा है। इस सचाई को हम अस्वीकार न करें। इसलिए यह नहीं कहा जा सकता—सब स्वार्थ को छोड़ कर परमार्थ का जीवन जीएं। यह असंभव बात होगी और कोई मानेगा भी नहीं। महत्त्वपूर्ण और जरूरी यह है कि स्वार्थ को न छोड़ पाएं तो उसका सीमाकरण जरूर करें। ऐसा स्वार्थ भी नहीं होना चाहिए, जो दूसरे के स्वार्थ में बाधा डाले, कठिनाई पैदा करे। कोरा स्वार्थ किसी काम का नहीं होता।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परीक्षा का निष्कर्ष

एक राजा ने तीन नौकर रखे। परीक्षा लेने के लिए तीनों को राजा ने अपने पास बुलाया। राजा ने उनसे पूछा—'बताओ, अगर संयोगवश ऐसा हो जाए कि मेरी दाढ़ी और तुम्हारी दाढ़ी में एक साथ आग लग जाए, तो तुम क्या करोगे ?' एक बोला—'महाराज ! पहले अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा' राजा ने कहा—'तुम स्वार्थी आदमी हो, इसलिए काम के योग्य नहीं हो।' दूसरे ने कहा—'महाराज ! मैं आपका सेवक हूं, इसलिए पहले आपकी चिन्ता करूंगा, अपनी नहीं। मैं आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा।' राजा ने सोचा—यह चालाक और चापलूस आदमी है। जो कह रहा है, वैसा करेगा नहीं। वह भी नहीं जचा। राजा ने तीसरे से पूछा उसने कहा—'महाराज ! ऐसी स्थिति में मैं एक हाथ से अपनी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा और दूसरे हाथ से आपकी दाढ़ी की आग बुझाऊंगा।' राजा ने उसे अपनी सेवा में नियुक्त कर लिया।

यह है स्वार्थ का सीमाकरण। केवल अपना ही स्वार्थ नहीं, दूसरे का भी हित साधना चाहिए। जहां इस तरह का संस्कार निर्मित होता है, हमारे व्यवहार की अनेक समस्याएं सुलझ जाती हैं। परिवारों में कलह क्यों होती है ? इसीलिए कि जहां देवरानियां-जेठानियां अपने-अपने बच्चे को प्राथमिकता देना शुरू करती हैं, वहीं दूसरों पर इसकी तीव्र प्रतिक्रिया शुरू हो जाती है। जहां सामुदायिक जीवन है, वहां अपने स्वार्थ को असीम न बनाएं, उसकी एक सीमा रखें कि इससे आगे नहीं बढ़ना है तो समस्या कभी पैदा नहीं होगी।

उदार दृष्टिकोण

संस्कार-निर्माण का दूसरा सूत्र है—उदार दृष्टिकोण। दृष्टिकोण हमारा विशाल होना चाहिए। संकीर्ण दृष्टि से देखने वाला अपने आस-पास तक ही देख पायेगा। आदमी को दूर तक की और आगे-पीछे की बात भी जरूर देखनी चाहिए। बहुत वर्ष पहले हम बीदासर की एक गली से होकर जा रहे थे। एक नोहरा देखा—उसकी जर्जर दीवारें ढह चुकी थीं, किन्तु विशाल फाटक और उसमें झूलता बड़ा-सा ताला अभी भी लटक रहा था। आगे तो ताला लगा बड़ा-सा दरवाजा और नोहरे की चारों ओर की दीवारें ध्वस्त। ताले

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

और दरवाजे का मतलब क्या रहा ? इसलिए आगे-पीछे की ही नहीं, अपितु चारों तरफ की सोच होनी चाहिए। दृष्टिकोण संकुचित होगा तो व्यवहार में उलझनें पैदा होंगी। दृष्टिकोण व्यापक और उदार होगा तो व्यापक हितों की ओर ध्यान जाएगा। संघर्ष का कारण ही संकुचित दृष्टिकोण है। संकुचित वृत्ति परिवार की भी समस्या है, समाज की भी समस्या है। बहुत सीमित दृष्टि से बात सोची जाती है इसीलिए अनेक समस्याएं उलझ जाती हैं।

हीन और अहं भाव से मुक्ति

संस्कार-निर्माण का तीसरा सूत्र है—हीनभावना और अहंभावना से मुक्त रहने का अभ्यास। महिलाओं में हीनभावना की समस्या ज्यादा देखी जाती है, यह स्वाभाविक भी है। पुरुष को अहंभाव अधिक सताता है तो महिलाओं को हीनभाव ज्यादा सताता है। हीनभाव और अहंभाव से मुक्त होकर संतुलित जीवन कैसे जीया जाए, यह एक प्रश्न है। हीनता के कारण भय पैदा होता है। भय के अनेक कारण हैं। भय के कारणों में ही आदमी बैठा है, इसलिए भय होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। हीनता की अनुभूति भी अस्वाभाविक बात नहीं है, किन्तु जिसे संस्कार का निर्माण करना है, उसके लिए यह अभ्यास जरूरी है कि वह कैसे हीनता और अहं की ग्रंथियों से बच सके ?

संगठन और अनुशासन के प्रति विश्वास

संस्कार निर्माण का चौथा सूत्र है—संगठन और अनुशासन के प्रति विश्वास। इनके प्रति आस्था का निर्माण होना चाहिए। संस्कार निर्माण के लिए अनुशासन का मूल्यांकन बहुत जरूरी है। बहुत सारे सिद्धान्त हैं, जिनमें तर्क की गुंजाइश होती है, किन्तु अनुशासन इस मामले में निरपवाद है। इस संबंध में कोई तर्क नहीं होता। एक सैनिक कभी तर्क नहीं करता। क्या सेना में पढ़े-लिखे नहीं होते ? वहां शिक्षित होते हैं, किन्तु वहां तर्क नहीं चलता। आदेश के सिवाय दूसरा कोई शब्द नहीं मिलता। संगठन भी उतना ही आवश्यक है। इन दोनों के प्रति एक नया दृष्टिकोण बनना चाहिए—अनुशासन में रहना है और अनुशासन का विकास करना है। शक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अकेले की नहीं बनती और शक्तिशून्य जीवन किसी काम का नहीं होता। शक्ति संगठन के बिना आती नहीं। कहा गया—संघे शक्ति कलौ युगे।' इसके स्थान पर यह कहा जाना चाहिए—'सघे शक्ति सदा युगे।' संघ में शक्ति तो हर काल में वांछनीय है। किसी काल विशेष में ही क्यों ? शक्ति आती है संगठन से। शरीर में एक टिशू या सेल शक्ति कहां से ला पायेगा ? अनेक सेल्स मिलते हैं, तब कहीं कोशिकाओं का संगठन बनता है और शक्ति आती है। संगठन में शक्ति है, यह त्रैकालिक सिद्धान्त है, यह केवल कलियुग की ही बात नहीं है।

संगठन और अनुशासन—दोनों के संस्कार बनने चाहिए। समाज में दोनों की अनिवार्यता है। शिष्ट समाज वही होता है, जो अनुशासन और संगठन को मान कर चलता है। जब आचार्य भिक्षु ने तीन साध्वियों को दीक्षित किया, तब उन्होंने साध्वियों से कहा—'देखो, तुम तीनों की दीक्षा हो रही है। संघ में तीन साध्वियां रह नहीं सकतीं। मान लो कोई एक स्वर्गवासी हो जाए तो दो को अनशन करना होगा। अगर इतना साहस हो तो तुम लोगों को दीक्षा लेनी चाहिए।' यह था उनका अनुशासन और अनुशासन की व्यवस्था। अनुशासन सामुदायिकता को चिरजीवी बनाने वाला है। वही संघ, समाज और संगठन चिरजीवी रह सकता है, जहां अनुशासन है। वही संगठन शक्तिशाली बनता है, जो अनुशासन के साथ चलता है। इसलिए इन दोनों को समान रूप से महत्त्व देना होगा। ये चार सूत्र हैं संस्कार-निर्माण के, जिनसे व्यक्ति स्वयं को संस्कृत कर सकता है।

प्रश्न संतान को संस्कारित करने का

दूसरा प्रश्न है—संतान को संस्कारित करने का। बच्चों के संस्कारों का निर्माण कैसे करें ? शैशवावस्था और बाल्यावस्था में बच्चे के साथ कैसा व्यवहार होना चाहिए ? उसे क्या सिखाना चाहिए ? इस बात का ज्ञान प्रत्येक माता-पिता को होना जरूरी है। मां को तो प्रारम्भ से ही बैठना, चलना और फिर बोलना सिखाना पड़ता है। बच्चे के संस्कार ऐसे हों, जो जीवनभर कदम-कदम पर काम आएं। वे संस्कार हमेशा उसके लिए एक अच्छे मित्र और हितैषी का काम दे सकें। इसके लिए सर्वप्रथम आवेश

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया सिखाई जानी चाहिए। अपने आवेशों पर नियंत्रण कैसे करें, इसका प्रारम्भ से ही बच्चे को अभ्यास कराया जाना चाहिए। जो माता-पिता अपने बच्चों को इस तरह के संस्कार नहीं देते, वे उनके शत्रु हैं।

शत्रु हैं वे माता-पिता

कहा गया —**'माता शत्रु पिता वैरी याभ्यां बालो न पाठितः;**—जो बच्चे को नहीं पढ़ाते हैं, वे माता-पिता उसके दुश्मन हैं। आज माता-पिता बच्चे को पढ़ा कर सोचते हैं—क्या मैंने इसे इसीलिए पढ़ाया था ? बच्चे के आचरण और व्यवहार को देखकर आज अधिकांश अभिभावकों की यही प्रतिक्रिया होती है। आज इस सूक्त को बदल कर यह कहा जाना चाहिए—जिन्होंने अपने बच्चे को अच्छे संस्कार नहीं दिये या आवेशों पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया, वे माता-पिता उसके दुश्मन हैं। यह सूक्त ज्यादा सटीक बैठता है—माता शत्रु पिता वैरी, याभ्यां बालो न संस्कृतः। बच्चे को अच्छी शिक्षा दिला दी, किन्तु बच्चा शराब पीता है, अपराध में लिप्त है, झगड़ा-फसाद करता है तो वह शिक्षा किस काम की होगी ? ऐसा आचरण वह इसलिए करता है कि उसे आवेशों पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया गया। शराब पीने की आदत भी आवेश के कारण होती है। एक आवेश जागता है तो व्यक्ति शराब की शरण लेता है। एक आवेश जागता है तो वह अपराध में चला जाता है। एक आवेश जागता है, आदमी क्रोधी और हत्यारा बन जाता है। ये सारे आवेश के परिणाम हैं, जो व्यक्ति से बुरे आचरण करवाते हैं। प्रारम्भ से ही उन पर नियंत्रण करना नहीं सिखाया जाता है तो यह किसी भी बच्चे के प्रति न्याय की बात नहीं होती।

एकाग्रता का अभ्यास कराया जाए

संस्कार निर्माण का एक सूत्र है—बच्चे को एकाग्रता का अभ्यास कराया जाए। यह काम बचपन से ही शुरू किया जाना चाहिए। यदि बचपन से ही यह अभ्यास कराया जाए तो उसके बहुत अच्छे परिणाम सामने आएंगे। एकाग्रता के अभ्यास के साथ उसे संकल्प शक्ति के विकास का भी अभ्यास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कराया जाना चाहिए। अगर सात वर्ष की अवस्था से ये तीन बातें बच्चों को सिखा दी जाएं तो फिर किसी भी माता-पिता को आगे चलकर यह कहने की नौबत नहीं आएगी कि क्या हमने यही दिन देखने के लिए इतना पढ़ाया था ? ऐसा होता है तो बच्चे में जो अच्छे संस्कारों के बीज निहित हैं, उनके अंकुरित होने, पल्लवित-पुष्पित होने और फलित होने का सहज ही अवसर मिल जाता है। यह ऐसी उर्वरा भूमि है, जिसमें अच्छे बीजों का उगना अनिवार्य है।

दीर्घश्वास का प्रयोग

प्रश्न है—ये संस्कार कैसे दिए जाएं ? इनके साधन क्या हो सकते हैं ? इसका पहला उपाय है—दीर्घ श्वास का प्रयोग। बच्चे को लम्बा श्वास लेना सिखाया जाए और धीरे-धीरे इतना अभ्यास करा दिया जाए कि वह एक मिनिट में चार-पांच श्वास लेना सीख जाए। अगर पांच या दस मिनट भी बच्चे को इस तरह का अभ्यास कराया जाए तो तीन महीने में बच्चे के व्यवहार में पर्याप्त अन्तर देखा जा सकता है। उसे क्रोध आना कम हो जायेगा, मादक वस्तुओं से वह बहुत दूर रहेगा। मादक वस्तुओं का सेवन मानसिक थकान मिटाने के लिए होता है। नशे की यह खूबी है कि वह एक बार तो स्वर्ग जैसी सुख की अनुभूति करा देता है। दीर्घ श्वास का अभ्यास करने वाला, वर्तमान में जीने वाला इस तरह के झूठे सुख की खोज में नहीं जायेगा। उसे दीर्घश्वास में उससे ज्यादा नशा मिलेगा, जितना मादक पदार्थ में मिलता है। उसे बाहर का नशा खोजने की जरूरत ही नहीं पड़ेगी। नशे के जो परिणाम हैं, आफ्टर इफेक्ट्स हैं, उनसे सभी परिचित हैं, फिर भी नशा करते हैं, इसलिए कि दुनिया के झंझटों से, परेशानियों से, मानसिक उलझनों से मुक्ति मिलती है, स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति होती है। दीर्घ श्वास का प्रयोग करने वाला नशे के बिना भी वैसा स्वर्गिक आनन्द पा लेता है, इसलिए नशा करने की बात उसके मन में ही नहीं आती है।

अनुभव सिद्ध तथ्य

अनेक बुरी आदतों से बचने का एक बहुत अच्छा उपाय है—दीर्घ श्वास

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का प्रयोग। जिन बच्चों में गुस्से की प्रवृत्ति ज्यादा होती है, उन्हें दीर्घ श्वास का प्रयोग बराबर कराया जाए तो निश्चय ही उसके अनुकूल परिणाम आएंगे। बच्चों के लिए नहीं, सभी के लिए यह अचूक उपाय है कि गुस्सा आते ही पांच-सात मिनट दीर्घश्वास का प्रयोग किया जाए, गुस्सा समाप्त हो जाएगा। यह अनुभव सिद्ध तथ्य है कि छोटा श्वास आता है तो गुस्सा उतर आता है, श्वास लम्बा होता है तो आवेश विदा हो जाता है। आवेश को विदा करने का सबसे अच्छा उपाय है श्वास को लम्बा करना। आवेशों को निमंत्रित करने का सबसे सरल उपाय है छोटा श्वास लेना। आवेश तब आता है, जब श्वास छोटा चलता है या जब आवेश आता है तब वह श्वास को छोटा बनाकर आता है। दीर्घ श्वास में आवेश आए, यह सम्भव ही नहीं है।

जरूरी है जागरूकता

तनाव को कम करने का एक उपाय है शिथिलीकरण भी है, किन्तु संस्कार देने वाले ये उपाय तभी कारगर होंगे जब बच्चे के माता-पिता इस संबंध में जागरूक होंगे। जागरूकता नहीं है और ठीक से समझा नहीं जाता है तो जानी हुई, सुनी हुई बात भी काम नहीं देती।

न्यायाधीश ने चोर से कहा—'तुम बार-बार दूसरों के घर में क्यों घुस जाते हो ? मैंने तुमसे कई बार कहा है कि दूसरों के घर में चोरी से प्रवेश न किया करो, किन्तु तुम ऐसी हरकत बार-बार क्यों करते हो ?' चोर ने कहा—'मान्यवर ! मुझे आपकी नसीहत हर समय याद रहती है, किन्तु क्या करूं, जब घर के मुख्य द्वार पर 'स्वागतम्' लिखा देखता हूं, तब मैं स्वयं को रोक नहीं पाता।'

अवश्यंभावी है सुखद परिणाम

हम हर बात का गलत अर्थ लगाने के आदी हो गये हैं। बात को ठीक से नहीं समझते हैं या कोई बहाना बना लेते हैं, चालाकियां करते हैं। निर्माण कहां से हो ? कैसे हो ? निर्माण के लिए पूरी सचाई के साथ इन बातों पर ध्यान दिया जाए, यह अपेक्षित है—कैसे अपने संस्कारों का निर्माण करें, कैसे अपने बच्चों के संस्कार का निर्माण करें ? आवेशों पर नियंत्रण का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अभ्यास, एकाग्रता बढ़ाने का अभ्यास और संकल्पशक्ति का विकास—अगर ये तीन बातें अभिभावक अपने बच्चों को सिखा सकें तो वे बच्चे का उतना भला कर पाएंगे, जितना दूसरा कभी नहीं कर सकेगा। परीक्षा के तौर पर ही सही, माताएं अपने बच्चों में संस्कार के ये तीन सूत्र आरोपित करें। सुखद परिणाम अवश्यंभावी हैं।

□□

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्य महाप्रज्ञ की प्रमुख कृतियां

- मन के जीते जीत
- किसने कहा मन चंचल है
- जैन योग
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- आभामण्डल
- मेरी दृष्टि : मेरी सृष्टि
- एकला चलो रे
- एसो पंच णमोक्कारो
- अपने घर में
- मैं हूं अपने भाग्य का निर्माता
- अर्हम
- नया मानव नया विश्व
- कर्मवाद
- महावीर की साधना का रहस्य
- घट-घट दीप जले
- मैं : मेरा मन : मेरी शान्ति
- भिक्षु विचार-दर्शन
- समस्या को देखना सीखें
- धर्म के सूत्र
- विचार को बदलना सीखें
- मनन और मूल्यांकन
- जैन दर्शन और अनेकान्त
- आमंत्रण आरोग्य को
- जैन दर्शन : मनन और मीमांसा
- शक्ति की साधना
- जैन धर्म के साधना सूत्र
- महावीर का स्वास्थ्यशास्त्र
- मुक्तभोग की समस्या और ब्रह्मचर्य
- नया मानव : नया विश्व
- अहिंसा और शान्ति
- महावीर का अर्थशास्त्र
- अध्यात्म का प्रथम सोपान : सामायिक
- अहिंसा तत्वदर्शन
- अतीत का बसंत : वर्तमान का सौरभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विचार को बदलना सीखें

आचार्य महाप्रज्ञ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org